* ओ३म् *

श्राद्ध विवेक

वेदप्रिय शास्त्री

आर्य परिवार प्रकाशन समिति,
कोटा, राजस्थान

Scanned by CamScanner

श्राद्ध विवेक

सप्रेम
डा. धर्मेन्द्र मीना
जगदीशपुर,
बड़ौदरा–390 001

लेखक

वेदप्रिय शास्त्री

प्रकाशक

आर्य परिवार प्रकाशन समिति,
कोटा, राजस्थान

Scanned by CamScanner

प्रकाशक :

आर्य परिवार प्रकाशन समिति,

४-भ-२७, विज्ञान नगर, कोटा

कोटा (राज.) ३२४००५

प्रथम संस्करण :

२०५१ वि०, १९९४ ई०

सर्वाधिकार लेखकाधीन

मूल्य : ~~८.०० रुपये~~

Scanned by CamScanner

समर्पित

माँ

की स्मृति को

—देवेन्द्र

Scanned by CamScanner

लेखक की ओर से

आर्यसमाज बारां में एक अत्यन्त निष्ठावान् एवं श्रद्धालु आर्य पुरुष हैं जिनका नाम है श्री श्रवणलालजी शर्मा। उन्होंने अपनी पूज्या माता स्वर्गीया बद्रीबाई की स्मृति को चिरस्थायी रखने की दृष्टि से मुझसे निवेदन किया कि आप एक सन्ध्या हवन की पुस्तिका का सम्पादन कर दें तो मैं उसे माताजी की पुण्य स्मृति में प्रकाशित करवा देता हूँ। मैंने एतदर्थ अपनी स्वीकृति भी देदी और सन्ध्या यज्ञ की पुस्तक की पाण्डुलिपि भी बनाने में लग गया, इसी समय मेरे मन में एक विचार आया कि आश्विन् मास आ रहा है, 'परोपकारी' मासिक के लिए श्राद्ध विषय पर एक लेख लिखूँ। अतः लेख की सामग्री एकत्र करना प्रारम्भ कर दिया। अभी आधा लेख ही लिखा था कि हमारे अभिन्न साथी डॉ. रामकृष्ण आर्य ने उसे पढ़ा और कहा कि इसे पुस्तकाकार रूप प्रदान करो क्योंकि इतने प्रभावशाली ढंग से अभी तक इस विषय में बहुत कम लिखा गया है। मुझे उनका परामर्श रुचिकर लगा और मैंने उस लेख का कुछ विस्तार करके एक पुस्तक का रूप दे दिया। साथ ही श्री श्रवणलालजी शर्मा से भी निवेदन किया कि पूज्या मां की स्मृति में सन्ध्या यज्ञ की पुस्तक छपाने के स्थान पर पितृपूजन पर लिखी गई यह पुस्तक प्रकाशित कराना अधिक उपयोगी होगा। उन्हें मेरा विचार उचित लगा और वे इससे सहर्ष सहमत हो गए।

श्री श्रवणलालजी शर्मा के मन में अपनी पूज्या माता के प्रति अपार श्रद्धा भाव भरा हुआ है। उनकी माता श्रीमती बद्री

Scanned by CamScanner

बाई ने बड़े साहस और धैर्य के साथ संघर्षमय जीवन जीते हुए अपने पुत्र का पालन-पोषण और शिक्षण किया था। बचपन में ही श्री श्रवणलालजी के सर से पिता का हाथ उठ गया था, वे अपने पिता की अरथी को कन्धा भी न लगा सके थे, क्योंकि वे स्वयं उस समय रोग शैय्या पर लेटे हुए थे। खानदान के लोगों में भी कोई नहीं था। पिता की चिता को अग्नि श्री श्रवणलालजी के मामाजी ने दी थी। विधवा माता ने मन्दिरों की पूजा तथा अन्य मजदूरी करते हुए सदाचार और स्वाभिमान का जीवन अपना कर अपने बच्चों का पालन किया था। यही कारण है श्री श्रवणलालजी के मन में उनके प्रति असीम अनुराग है और वे प्राय: मुझसे अपनी माता के गुणगान करते-करते भावविभोर हो जाते हैं। वे अपने नाम को सार्थक करते वास्तव में 'श्रवण' ही हैं। बड़े सौभाग्य से ही इस प्रकार के मां-बेटे संसार में देखने को मिलते हैं। इस 'श्राद्ध विवेक' पुस्तक के प्रकाशन में उन्होंने अपनी पवित्र कमाई में से ६०००/ रु. का सात्विकदान दिया है। इसके लिए लेखक उनका हृदय से आभारी है और परमेश्वर से प्रार्थना करता है कि उनकी यह सुमति सदा बनी रहे।

पितृयज्ञ या श्राद्ध का अर्थ है पितरों को श्रद्धापूर्वक उनका भाग प्रदान करके उनसे उपकार एवं आशीष ग्रहण करना। परमात्मा प्राणिमात्र का माता और पिता है। वह पितरों का भी पितर है। सिसृक्षा से वही प्रकृति में इन दोनों तत्वों को संक्रमित कर देता है। सम्पूर्ण सृष्टि इन्हीं मातृ पितृ तत्वों के संयोग का परिणाम है। प्रत्येक वस्तु या प्राणिमात्र के जन्म के लिए माता-पिता की आवश्यकता होती है। पृथ्वी हमारी सबकी आदिमाता है और द्यौ हमारा पिता है। इन्हीं दोनों के माध्यम से प्रत्येक प्राणी में मातृ-पितृ तत्व प्राप्त होते हैं जिनसे प्रेरित होकर वे

Scanned by CamScanner

प्रजनन कृत्य में प्रवृत्त होते हैं। इस प्रजनन कार्य में तत्पर अनेक पदार्थ पितर कहलाते हैं। जिस मार्ग से प्राणी माता-पिता के दर्शन करता है उसे वेद में पितृयान कहा गया है और सृष्टि के इस विभाग को पितृ लोक नाम दिया गया है। वैदिक कर्मकाण्ड में पिण्डपितृयाग (श्रौत) इसी मार्ग और लोक को संस्कारित व सम्मुन्नत बनाने का अभिनय है। स्मृति में इसे श्राद्ध नाम दिया गया है। पितृ तत्व जिसमें माता-पिता दोनों आ जाते हैं, के संस्कारित होने से उत्कृष्ट कोटिका प्रजनन होता है। इसके दूषित और क्षुब्ध होने से स्वस्थ व संस्कृत प्रजनन नहीं हो सकता। पूर्व में हुए पितरों से नए होने वाले पितरों का शोधन व संस्कारीकरण होता है और भावी पितरों द्वारा भूतपूर्व पितरों की सेवा सुश्रूषा होती है। पितृयज्ञ के सम्पादन से पितरों को हवि प्राप्त होती है और वे हमारा पालन-पोषण और शिक्षण करते हैं। पितरों की तृप्ति से पितृकर्म के प्रति सबकी रुचि बनती है इससे पर्यावरण शोधन, नस्ल सुधार, सामाजिक समन्वय, अनुभव प्राप्ति एवं कृतज्ञता ज्ञापन आदि लाभ होते हैं। सन्तानों द्वारा कृतज्ञता प्रकट करने, श्रद्धापूर्वक सेवा सुश्रूषा करने से पितरों को सचमुच ही शान्ति और सुख मिलता है और बदले में वे देते हैं अपने अनुभव, शुभकामनाएँ और शुभ आशीष। पितृकृत्य एक विज्ञान है, इससे पितृलोक संस्कारित, सम्मानित और प्रोत्साहित होता है तथा संसार में उच्च कोटिका प्रजनन होता है। जन्म से लेकर मृत्यु तक और मृत्यु के पश्चात् पुनर्जन्म तक का समस्त लोक पितृलोक है। वेद में पितरों को श्रद्धापूर्वक तृप्त करने और उनसे ज्ञान व संरक्षण प्राप्त करने का विधान है। यज्ञ के द्वारा जलवायु, प्राण, ऋतु, सूर्य किरणें, पर्जन्यादि अनेक पितरों के शोधन व हवि प्रदान करके पितृलोक को समर्थ बनाए रखने का उपदेश है। मानव

Scanned by CamScanner

समुदाय में गृहस्थ जन पितर हैं। अनेक प्रकार के उत्पादन कर्म में कुशल पितर अनेक प्रकार के हैं इन सबको तृप्त सन्तुष्ट और प्रसन्न रखना बहुत आवश्यक है। इसके बिना लोक यात्रा दुःख-दायी होगी। वैदिक कर्मकाण्ड के दूषित हो जाने के कारण कुछ समय से यह जीवित पितरों के लिए किया जाने वाला कार्य मृतकों के लिए किया जाने लगा। कुछ स्वार्थी पुरोहितों ने मृत माता-पिताओं की तृप्ति के लिए ब्राह्मणों को भोजन कराने का नाम पितृ श्राद्ध रख दिया, इस प्रकार जीवित पितृ श्राद्ध के स्थान पर मृतक श्राद्ध प्रचलित हो गया।

प्रस्तुत पुस्तक में श्राद्ध एवं पितृयज्ञ के वास्तविक स्वरूप का संक्षिप्त किन्तु, सप्रमाण परिचय कराया गया है तथा मृतक श्राद्ध की निस्सारता सप्रमाण सिद्ध की गई है। आशा है पाठकगण इसके स्वाध्याय से पाखण्ड मुक्त होकर वास्तविक पितृपूजन में प्रवृत्त होंगे। विचारों को पुस्तकाकार करने का यह हमारा प्रथम प्रयास है, त्रुटियाँ सम्भावित हैं अतः विद्वज्जन क्षमा करते हुए मार्गदर्शन करेंगे, ऐसी आशा है।

पुस्तक के प्रूफ शोधन एवं प्रकाशन हेतु अनेक आवश्यक कार्य करने में हमारे अभिन्न मित्र डॉ. रामकृष्णजी आर्य का पूर्ण सहयोग मिला है, लेखक उनका आभारी है। प्रसिद्ध वैदिक विद्वान् आदरणीय पं. वेदव्रतजी मीमांसक ने हमारे अनुरोध पर पुस्तक की भूमिका लिखने की कृपा की है उनके भी हम बहुत आभारी हैं। वैदिक यन्त्रालय के प्रबन्धक श्री सतीशचन्द्र शुक्ल के भी बहुत आभारी हैं जिनके सहयोग से पुस्तक का उत्तम प्रकाशन सम्भव हो पाया है। सबका बहुत-बहुत धन्यवाद !

सीताबाड़ी
केलवाड़ा, जिला बाराँ (राज.)

—वेदप्रिय शास्त्री

Scanned by CamScanner

॥ ओ३म् ॥

भूमिका

समस्त सुखों का मूल पञ्चमहायज्ञों का अनुष्ठान और दुःखों का मूल उनको त्यागना ही है। संसार में विद्यमान-समस्त समस्याओं का एकमात्र उपाय पञ्चमहायज्ञ ही हैं। ये मानव को परोपकारी, कृतज्ञ, आत्मवान्, दयालु, सत्यवादी बनाते हैं। इनसे मानव, मानव बनता है और सर्वांश में संसार के लिए पूर्ण विश्वसनीय बनता है। इनको अपनाने वाला कभी किसी को हानि नहीं पहुंचा सकता है। किसी का अहित सोच भी नहीं सकता है। वह न केवल मानव मात्र का अपितु प्राणिमात्र का हित चाहता है। वह अपने स्वार्थ के लिए दूसरों का प्राण लेना नहीं चाहता, अपितु दूसरों के लिए अपना प्राण देना चाहता है। उसका अपना कोई भी स्वार्थ नहीं रहता। वह केवल अन्यों के उपकार के लिए लालायित रहता है। इन यज्ञों के न करने से मानव हिंसक, वञ्चक, लम्पट, आलसी, रोगी, स्वार्थी हो जाता है।

इसलिए मानव-समाज को शान्तिमय, स्वस्थ एवं समुन्नत बनाने के लिए महर्षियों ने वेदों के आधार पर पञ्चमहायज्ञों का विधान किया। उनमें से एक है पितृयज्ञ। वह जीवित ज्ञानी पितरों की तृप्ति के लिए श्रद्धापूर्वक सेवा करना है।

Scanned by CamScanner

मानव जीवन बहुतों के उपकार से चलता है। माता, पिता बालक को जन्म देते हैं। वे अपनी सुख सुविधा को छोड़कर उसकी रक्षा तथा उन्नति के लिए प्रयत्न करते हैं। उसके सुख-दुःख में अपना सुख-दुःख मानते हैं। वे सन्तान के दुःख को देखना तो क्या सुनना भी नहीं चाहते हैं। अहर्निश उसके हित की ही अभिलाषा करते हैं। खून पसीना करके सञ्चित सम्पत्ति को उसी को देना चाहते हैं। पुत्र माता-पिता का अहित सोच सकता है। तब भी वे पुत्र का अहित नहीं सोच सकते। हम माता-पिता के उपकार पर विचार करते हैं तो हृदय भर जाता है। इसी प्रकार उनके माता-पिता भी हित करते हैं। पितामह, पितामही, मातामह, मातामही बालक के प्रति कितना स्नेह रखते हैं कितना उपकार करते हैं! बालक को खिलाते हुए आनन्द में विभोर होते हैं। पैरों में मिट्टी भी लगने नहीं देते हैं। उनके निरपेक्ष उपकार को विचारते हैं तो आंखों में आंसू आ जाते हैं।

हम गुरुओं से पढ़ते हैं। पढ़कर अपने जीवन को उन्नत बनाते हैं पश्चात् सुख-सुविधाओं को प्राप्त करते हैं। सम्मान को प्राप्त करते हैं। इसका श्रेय गुरुओं को ही जाता है। हम उत्तम विद्वानों के प्रवचनों को सुनते हैं। उनके द्वारा प्राप्त ज्ञान के आधार पर अनेक समस्याओं से मुक्त होते हैं। उत्तम प्रेरणा और मार्ग-दर्शन को प्राप्त करते हैं। यह श्रेय उन ही विद्वानों को जाता है। ये सारे पितर हैं। उनसे उपकृत होने के कारण हम उनके ऋणी बनते हैं। हमारा कर्त्तव्य हो जाता है कि हम उनकी श्रद्धा से सेवा करके उनको सब प्रकार से तृप्त करें। इसी को श्राद्ध वा तर्पण कहा जाता है। यही पितृयज्ञ है।

पितृयज्ञ से समाज में अत्यन्त प्रेम वा प्रीति, एक दूसरे के प्रति सम्मान की भावना होगी। वृद्धों की अन्तिम अवस्था

Scanned by CamScanner

सुखमय होगी। श्रद्धा से पितृयज्ञ करने वाला अपनी वृद्धावस्था में अपनी सन्तान से सुख की आशा कर सकेगा। यह कृतज्ञता है। इसके न करने से कृतघ्नता होती है। समाज में सर्वत्र विगठन होता है। उच्छृङ्खलता बढ़ती है। अशान्ति व्याप्त हो जाती है। वातावरण दुःखमय और विषाक्त बन जाता है। अपने पितरों की सेवा न करने वाला महान् स्वार्थी, नास्तिक, लम्पट, निर्दयी, स्नेह और सहानुभूति से हीन होता है। जो अनुपम, उपकारी माता-पिता आदि का उपकार नहीं मानता, उनका प्रत्युपकार नहीं करता, वह अन्यों का उपकार कैसे करेगा? परमपितः परमात्मन् तू धन्य है! वेद द्वारा तूने पितरों की सेवा करने की विद्या बतलाई। धन्य हैं ऋषि जिन्होंने पञ्चयज्ञों का विस्तार किया। धन्य है परमर्षि दयानन्द जिसने संसार से विरोध मोल लेकर विषपान करके भी जीवित पितृयज्ञ रूपी इस सत्य को हमें बतलाया।

किन्हीं कारणों से बहुत सारे लोग पितृयज्ञ को मृतकों के लिए मानते हैं। यदि इसे मृतकों के लिए माना जाए तो जीवितों का कौन करेगा? और उसका विधान किस शास्त्र में है? यदि पितृयज्ञ मृतकों का होता है तो अतिथि यज्ञ और बलिवैश्वदेव यज्ञ मृतकों का क्यों नहीं होगा? मृतक श्राद्धवादियों को इसका उत्तर देना पड़ेगा।

पितर ज्ञानियों को कहते हैं। चन्द्र का अर्थ आह्लादस्वरूप और आह्लादकारक परमेश्वर है। ज्ञानी लोग (योगी लोग) सदा ईश्वर प्रणिधान युक्त रहते हैं। इसी को काव्यमय भाषा में 'पितर् चन्द्र पर रहते हैं, ऐसा कहा जा सकता है। इतने मात्र से मृत व्यक्ति चन्द्र गोल पर रहते हैं यह नहीं बनता। आज का मानव चन्द्र गोल पर जाकर देख रहा है। वहाँ कोई पितर नहीं हैं।

Scanned by CamScanner

हमारे यहाँ भूगोल पर कृष्णपक्ष का आरम्भ होता है तब शुक्लपक्ष में भूगोल पर चन्द्रकला की वृद्धि के समान चन्द्रगोल के पृष्ठ भाग पर सूर्य के प्रकाश की वृद्धि प्रारम्भ होती है। हमारी अमावस्या के समय वहाँ मध्याह्नवत् प्रकाश होता है। पश्चात् प्रकाश घटता-घटता पूर्णिमा के दिन चन्द्रगोल के पृष्ठ पर अन्धकार छा जाता है। इसीलिए शुक्लपक्ष में नहीं कृष्णपक्ष में श्राद्ध किया जाता है। क्योंकि चन्द्र पृष्ठ पर तब ही प्रकाश रहता है। जब सूर्य भूगोल के दक्षिण गोलार्ध में प्रवेश करता है तब उसको पितृयान कहा जाता है। उस समय दक्षिण ध्रुव प्रदेश पर प्रकाश प्रारम्भ होता है। छः मास तक ध्रुव पर से सूर्य दीखता है। इसको पितृयान (राक्षसों का) दिन माना जाता है। इसीलिए सूर्य के दक्षिण गोल में प्रविष्ट होते ही अर्थात् सूर्य कन्याराशिगत=कनागत होते ही आरम्भ के १५ दिनों में श्राद्ध करते हैं। वास्तव में चान्द्र आश्विन मास के कृष्णपक्ष में सूर्य सदा कन्या राशि में=दक्षिण गोल में नहीं आता। अपितु सौर आश्विन में (२२ सितम्बर से) आता है। पौराणिकों के अनुसार पितरों का शरीर ही नहीं तो सूर्य चन्द्र के प्रकाश से उन पितरों का क्या प्रयोजन सिद्ध होगा ?

श्री वेदप्रियजी शास्त्री ने बहुत स्वाध्याय मनन चिन्तन के पश्चात् इस ग्रन्थ का प्रणयन किया है, यह ग्रन्थ के अध्ययन से ज्ञात होता है। आपने श्राद्ध के विषय में अच्छा विचार किया है। पितृ, पितर्, उनके कर्तव्य तथा स्वधा पर युक्ति प्रमाण पुरस्सर विवेचन किया है। आश्विन मास में ही श्राद्ध करने की युक्ति को उपस्थित करके यह सिद्ध किया है कि श्राद्ध मृतकों का नहीं होता अपितु जीवितों का ही होता है। युक्ति एवं प्रमाणों के आधार पर मृतक श्राद्ध को वेदविरुद्ध सिद्ध कर दिया है।

Scanned by CamScanner

श्री काणेजी ने मृत पिता को पिण्ड देना माना है। उस पर शास्त्रीजी का आक्षेप है कि यदि मृत को पिण्डदान माना जाय तो 'जिसका पिता मृत हो उसी को श्रौत याग की दीक्षा लेनी पड़ेगी। यह जीवित पितृयज्ञ के पक्ष में अकाट्य युक्ति है। इसका समाधान मृतक श्राद्धवादियों के पास नहीं है। इसका एकमात्र समाधान जीवित श्राद्ध मानना ही हो सकता है। शास्त्रीजी की यह एक अकुण्ठित घोषणा है कि "पितर् का अर्थ तीन मृत पूर्वज आदि" जैसा कि श्री काणे ने माना है वैसा वेदों में कहीं नहीं।

मृतक श्राद्ध की मनोरंजक बातों के वा वृषोत्सर्ग के नाम से शास्त्रीजी ने जो मृतक श्राद्ध की समीक्षा की है उसे पौराणिक बन्धुओं को पवित्रमनस्क होकर विचारना चाहिए।

पौराणिक बन्धु वेद सिद्धान्तों को छोड़ने के कारण सत्य से, विज्ञान से दूर चले गए। यही कारण है कि उन्होंने ईश्वर की उपासना छोड़ दी। चेतन देवताओं का सत्कार छोड़ दिया। अतः वे मृतकों का श्राद्ध, मृतकों का विवाह, मृतकों की पूजा, वृक्षों का लकड़ियों का विवाह और उनकी पूजा आदि करने लगे हैं। इसी कारण आज संसार को सन्मार्ग दर्शन के स्थान पर मृतक श्राद्धवादी संसार के समक्ष विज्ञानहीन, मूढ बने हुए हैं। आनन्द, सम्मान, स्वातन्त्र्य से वञ्चित हैं। यदि महर्षि दयानन्द प्रदर्शित वेदोक्त सिद्धान्त को अपनावें तो वे संसार को शान्ति प्रदान कर सकते हैं। परमात्मा उनके आत्मा में ज्ञान का प्रकाश करे जिससे वे पावन वेद के अनुयायी बनकर दुःखों से तरें, तारें।

इस उत्तम कृति के लिए शास्त्रीजी के लिए साधुवाद। मैं उनसे अनुरोध करूंगा कि वे इसी प्रकार वैदिक धर्म की

Scanned by CamScanner

वास्तविकता को लोगों के समक्ष उपस्थित करते रहें। परमात्मा से उनके दीर्घ जीवन के लिए प्रार्थना करता हूँ। सब महानुभावों को मैं प्रेरित करना चाहता हूं कि वे इस पुस्तक का अधिकाधिक प्रचार करें। इसके प्रकाशकों के लिए भी मैं साधुवाद देता हूँ। इति शम्।

आचार्य वेदव्रत मीमांसक
'आर्षगुरुकुल' वड्लूर कामारेड्डी
जिला-निजामाबाद (आ. प्र.) ५०३११२.

—:※※:—

Scanned by CamScanner

श्राद्ध विवेक

श्राद्ध शब्द सुनते ही जन साधारण से लेकर बड़े-बड़े शास्त्री आचार्यों तक का ध्यान तत्काल आश्विन् मास के कृष्ण पक्ष के पन्द्रह दिनों में से किसी दिन किए जाने वाले मृत पूर्वजों के निमित्त पिण्डदान की ओर ही जाता है तथा उस दिन नाममात्र के ब्राह्मण कहलाने वाले भोजन भट्टों को कराये जाने वाले भोजन से पितृतृप्ति होने की ही चर्चा होती है। इसके अतिरिक्त श्राद्ध का अन्य कोई अर्थ हमारे मस्तिष्क में नहीं आता यह अति दुर्भाग्यपूर्ण है। श्राद्ध का यह कुत्सित रूप सदियों से हमारे शोषण और तबाही का कारण रहा है। वस्तुतः यह वास्तविक श्राद्ध का विकृत रूप है, जो समाज के अगुवा और पुरोहित कहलाने वाले चालाक लोगों द्वारा जन साधारण का स्वत्वहरण करने के लिए रचे गये मिथ्या कर्मकाण्ड का ही अंगभूत षड्यन्त्र और पाखण्ड है। अस्तु—

श्राद्ध के वास्तविक अर्थ और स्वरूप का वर्णन शास्त्र विधान के अनुसार पाठकों के लाभार्थ तथा जन सामान्य में प्रचारार्थ यहाँ किया जाता है।

श्राद्ध एक स्मार्त कर्म है जो वेदवर्णित पितृयज्ञ के पर्याय के रूप में स्मृतिकारों ने प्रयुक्त किया है। यह वर्णाश्रम व्यवस्था प्रदत्त एक, समाज को सुदृढ़ करने वाला महत्त्वपूर्ण कर्म है।

Scanned by CamScanner

और उनसे उपकार व आशीष ग्रहण करने, सर्वत्र शान्त और सौहार्दपूर्ण वातावरण बनाने, पूर्वजों के अनुभवों से लाभ लेने तथा उनके प्रति कृतज्ञता प्रदर्शित करने के लिए किया गया था। राजर्षि मनु श्राद्ध की चर्चा यों प्रारम्भ करते हैं।

१. ऋषयः पितरो देवा भूतान्यतिथयस्तथा।
आशासते कुटुम्बिभ्यस्तेभ्यः कार्यं विजानता॥

—मनुस्मृति ३ / ८०

अर्थ—ऋषिगण, पितर, देव, प्राणी तथा अतिथि लोग गृहस्थीजनों से ही पोषण पाने की आशा करते हैं, अतः समझदार लोगों को उनके लिए जो कुछ करणीय है उसे करना चाहिए। अतः—

२. स्वाध्यायेनार्चयेदर्षीन् होमैर्देवान् यथाविधिः।
पितॄन् श्राद्धैश्च ननन्नैर्भूतानि बलिकर्मणा॥

—मनु० ३ / ८१

अर्थ—स्वाध्याय के द्वारा ऋषियों की पूजा, हवन द्वारा देवों की पूजा, श्राद्ध के द्वारा पितरों की पूजा, अन्न से अतिथिपूजा और बलिकर्म अर्थात् भोजन भाग देने से प्राणियों की पूजा होती है जिसे बलिवैश्वदेव यज्ञ कहा जाता है।

मनु के उक्त श्लोकों से विदित हुआ कि श्राद्ध का सम्बन्ध पितरों से है। मनुस्मृति में राजर्षि मनु ने गृहस्थ के लिए करणीय पाँच महायज्ञों का वर्णन किया है, उन्हीं में से एक पितृयज्ञ भी है। इसे ही मनु ने तर्पण नाम दिया है, यथा **'पितृयज्ञस्तु तर्पणम्'** अर्थात् पितरों की तृप्ति करना ही पितृयज्ञ है। इसे करने का प्रकार और काल का वर्णन करते हुए मनु कहते हैं—

Scanned by CamScanner

३. **कुर्यादहरहः श्राद्धमन्नाद्येनोदकेन वा।**
पयोमूलफलैर्वाऽपि पितृभ्यः प्रीतिमावहन् ॥

—मनु० ३ / ८२

अर्थ—'गृहस्थ प्रतिदिन पितरों को (मातापिता, पितामह आदि वृद्ध जनों को)—प्रीतिपूर्वक भक्षणीय भोजन, जल, दूध, कन्दमूल, फलादि पदार्थ देकर श्राद्ध करें। अतः स्पष्ट हुआ कि जीवित पितरों को प्रीतिपूर्वक भोजनादि से तृप्त करना ही श्राद्ध है और यह प्रतिदिन करना चाहिए। **'श्रद्धया यत् क्रियते तत् श्राद्धम्'** यह श्राद्ध का अर्थ है अर्थात् श्रद्धा से जो किया जावे वह श्राद्ध है। श्रद्धा कहते हैं शास्त्र कृत सत्योपदेश को आचरण में लाने की रुचि को। श्राद्ध शब्द यहाँ रूढ़ार्थ है अतः उसका अर्थ होगा **'श्रद्धया पितृभ्यः यत् क्रियते तच्छ्राद्धम्** अर्थात् पितरों के लिए जो श्रद्धापूर्वक किया जाने वाला शास्त्रविहित कर्म है उसे श्राद्ध कहते हैं। इससे पितरों का तर्पण होता है और यही पितृमहायज्ञ है। रुचिपूर्वक किया गया कर्म बोझ नहीं प्रतीत होता। वेद में इसकी भूरिशः चर्चा है।

यथा—

१. **ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिस्रुतम्।**
स्वधा स्थ तर्पयत मे पितॄन् ॥ —यजु० २-३४

२. **स्वधां पितृभ्यः अमृतं दुहाना आपोदेवीरुभययांस्तर्पयन्तु ॥**

—अथर्ववेद० १८-४-३९

अर्थात् शक्तिवर्धक मिष्ठान्न, फल, घी, दूध व अन्नजलादि सब पदार्थ स्वधा हो कर मेरे पितरों को तृप्त करें।

पितर का अर्थ—'पितर' शब्द संस्कृत की 'पा' धातु से निर्मित ऋकारान्त पितृ शब्द का बहुवचनान्त रूप है यथा—

Scanned by CamScanner

पिता-पितरौ-पितरः। अर्थात् पिता का बहुवचन पितर हैं। पिता कई प्रकार के होते हैं यथा—

जनिता चोपनेता च यश्च विद्यां प्रयच्छति।
अन्नदाता भयत्राता पञ्चैते पितरः स्मृतः॥

—चाणक्य नीति ६-२२

अपि च—

अन्नदाता भयत्राता, पत्नी तातस्तथैव च।
विद्यादाता, जन्मदाता पञ्चैते पितरो नृणाम्॥

—ब्रह्मवैवर्त ब्र० अ० १०

अर्थात् अन्न देने वाला, भय से रक्षा करने वाला, विद्या देने वाला, पत्नी का पिता और जन्म देने वाला, ये पाँच मनुष्य के पितर या पिता हैं।

वेदों में पिता या पितर शब्द रक्षा करने, पालन करने और जन्म देने वाले के अर्थ में आया है, इसके अतिरिक्त स्वकर्त्तव्य करते अवस्थावशात् क्षीण सामर्थ्य होने वाले वृद्ध जनों के लिए भी इस शब्द का प्रयोग हुआ है यथा—**'योऽपक्षीयते स पितरः'** शतपथ २-१-३-१ अर्थात् जो क्षीण हों वे पितर कहलाते हैं। इसी प्रकरण में दिन को देव रात को पितर, दिन के पूर्व भाग को देव और उत्तर भाग को पितर, तथा तीन पूर्व ऋतुओं को देव और उत्तर की तीन पितर कही गई हैं। अतः जीवन का पूर्व भाग देव और उत्तर भाग पितर कहलाता है। इसलिए वेद में पितर शब्द निम्नलिखित अर्थों में पाया जाता है।

१—सूर्य—'एष वै पिता य एष तपति'।

शतपथ—१४-१-४-१५

Scanned by CamScanner

२—सम्वत्सर—देखिए ऋग्वेद 'पञ्च पादं पितरं'।

१-१६४-१२

३—प्राण—'प्राणो वै पिता' ऐतरेय।—२-३८

४—पर्जन्य (मेघ)—'पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तु'।

अथर्ववेद १२-१-१२

५—द्यौलोक—'द्यौर्मे पिता.....'।

ऋग्वेद १-१६४-३३

६—ऋतुएँ—'ऋतवः पितरः'। कौषीतकीय ब्रा० ५-७ तथा शतपथ २-६-१-३२ व ९-४-३-८

७—द्यावापृथ्वी—ऋग्वेद—१-१६४-३३

८—ज्ञानी वृद्धजन—'अज्ञोभवति वै बालः
पिता भवति मन्त्रदा'। मनु० २-१५३

तथा—ऋग्वेद मन्त्र १०-८८-१८

९—किरणें—ऋग्वेद मन्त्र ९-८३-३ का सायण भाष्य 'पितरो जगद्रक्षकारश्मयः'।

१०—जन्म देने वाला—'यो नः पिता जनिता'।

ऋग्वेद १०-८२-३

११—स्वकुटुम्बी वृद्धजन—ये तो प्रसिद्ध ही हैं।

१२—चन्द्रलोक निवासी—देखिए आर्यभट्ट ज्योतिष ग्रन्थ गीतिका पाद श्लोक-१७ (भाष्यकार—उदयनारायण वर्मा)

उक्त पितरों के शास्त्रों में बारह प्रकार वर्णित हैं यथा—

१. सोमसदः २. अग्निष्वात्त ३. बर्हिषद्ः ४. सोमपाः
५. हविर्भुज ६. आज्यपा ७. सुकालिनः ८. यमराजा

Scanned by CamScanner

९. पितृपितामह प्रपितामह १०. मातृपितामही प्रपितामही
११. सगोत्राः १२. आचार्यादि सम्बन्धिनः ।

ये सभी या तो सृष्टिगत पदार्थ हैं या फिर भिन्न-भिन्न गुणकर्मों से युक्त जीवित मनुष्य हैं ।

पितृलोक—इन पितरों के विभाग और निवास स्थान को पितृलोक कहते हैं । परिवार में माता-पितादि जहाँ रहते हैं वही पितृलोक है । राष्ट्र में वृद्धजनों की रक्षा व पालनपोषण करने वाला विभाग पितृलोक कहलाता है ।

स्वधा—वेद में पितरों की चर्चा के साथ स्वधा का भी घनिष्ठ सम्बन्ध है । यथा—**पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः । पितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः । प्रपितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः । अक्षन् पितरोऽमीमदन्त पितरोऽतीतृपन्त । पितरः पितरः शुन्धध्वम् ।।** यजु० १९-३६

अर्थ—'स्वधा के अधिकारी स्वधायी पिता, पितामह, प्रपितामह लोगों को अन्न जल सत्कारपूर्वक दिया जावे, वे क्रीडा करते मोद मनाते तृप्त और सन्तुष्ट हों और हमें पवित्र करें ।'

स्वधा शब्द के वेद में अनेक अर्थ हैं । जिस प्रकार पितर अनेक हैं, उसी प्रकार उनको दी जाने वाली स्वधा भी पृथक्-पृथक् है । हम यहाँ स्वधा के कुछ अर्थ प्रस्तुत करते हैं । स्वधा शब्द दो रूपों में उपलब्ध होता है एक अव्यय और दूसरा नाम वाचक । स्वरादिगण में पढ़ा गया स्वधा शब्द अव्यय है । उणादि ४/७५ से 'स्वद्' आस्वादने से नामवाचक स्वधा शब्द बनता है । जब स्वधा शब्द अव्यय के रूप में प्रयुक्त हो तब उसका अर्थ उपहार, भेंट, उपभोग्य पदार्थ प्रदान करना तथा सत्कार करना होता है । परन्तु नाम वाचक होने पर भिन्न अर्थ होते हैं । यथा—

Scanned by CamScanner

१—स्वधा = शरद ऋतु (स्वधा वै शरद्)

—शतपथ १३-८-१-६

२—स्वधा = जल (स्वधा उदक नाम) —निरुक्त १-१२

३—स्वधा = अन्न (स्वधा अन्ननाम)—निरुक्त २-७

४—स्वधा = द्यावापृथिवी नाम (निरुक्त ३-३०)

५—स्वधा = स्वादिष्ठ पदार्थ (यजु० २-३४)

६—स्वधा = प्रकृति (ऋग्वेद १०-१२९-२, आनीदवातं स्वधया तदेकं)

७—स्वधा = स्वधारित शक्ति और ज्ञान भाग, स्वभाव इत्यादि ।

अतः लोक में स्वधा का अर्थ होगा वे खाद्य पदार्थ या उपहार द्रव्य जो हम या हमारा राष्ट्र अपने जीवित पितरों द्वारा किए गए उपकार के बदले उपहार स्वरूप उन्हें प्रदान करते हैं अथवा कानूनन या नियमानुसार जो भाग उन्हें देना नियत है और जिसके वे ग्रहण करने के अधिकारी हैं। सरकार द्वारा वृद्धों को दी जाने वाली पेन्शन और सहायता राशि स्वधा ही है और परिवारों में पुत्रादि द्वारा वृद्ध जनों का भरणपोषण करने के लिए शास्त्र और समाज द्वारा की गई व्यवस्था के अनुसार दिया जाने वाला पोषण भाग भी स्वधा है, इसे प्राप्त करना पितरों का अधिकार है। किन्तु जब इसे शासन या समाज केभय से नहीं प्रत्युत कृतज्ञ मन से श्रद्धापूर्वक दिया जावे तो यह कृत्य श्राद्ध कहलाता है। इस स्वधा से पितरों को जर्जरित होने से बचाने तथा दीर्घायुपर्यन्त जीने की व्यवस्था करने का वेद में स्पष्ट उल्लेख है यथा—

Scanned by CamScanner

व्याकरोमि हविषाहमेतो, तो ब्रह्मणा व्यहं कल्पयामि।
स्वधां पितृभ्यो अजरां कृणोमि दीर्घेणा युषा समिमान्त्सृजामि॥
—अथर्व० १२-२-३२

अर्थात् 'मैं गृहस्थ ब्रह्मयज्ञ और देवयज्ञ (संध्या, स्वाध्याय और अग्निहोत्र) वेदानुसार सम्पादित करता हूँ और पितरों को जीर्णता से मुक्त करने वाली स्वधा देकर उन्हें दीर्घायु करने का उद्योग करता हूँ।'

वेदानुसार पितरों के प्रति कर्त्तव्य—ऊपर उल्लिखित अनेक प्रकार के पितरों के प्रति हमारे भिन्न-भिन्न कर्त्तव्य तथा भिन्न प्रकार की स्वधा प्रदान करने का विधान है, जो वेद में पितरों के अध्ययन से विदित हो जाता है। हम यहाँ संक्षेप में उसका वर्णन करते हैं।

१. यज्ञ कृत्य द्वारा प्राणों और सूर्य किरणों का ज्ञान प्राप्त कर उन्हें अनुकूल बनाना।

२. अपने जीवित मातापितापितामहादि व आचार्यादि वृद्धजनों के स्वागत सत्कार, भोजनादि का प्रीतिपूर्वक प्रबन्ध करना।

३. उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करना और उनके अनुभवों से लाभ उठाना।

४. राष्ट्र रक्षा में निपुण लोगों के भोजन आवासादि की व्यवस्था करना।

५. परिवार समाज व राष्ट्र के आयु वृद्ध व ज्ञान वृद्ध पितरों को स्थाई जीविका-वेतन, पेन्शनादि की व्यवस्था करना।

Scanned by CamScanner

६. पितरों को स्वस्थ निरोग दीर्घजीवी बनाने का प्रयास करना और उनकी सुख शान्ति व आराधना को बाधा रहित बनाने में सहायता करना इत्यादि। यही वेद वर्णित पितृयज्ञ है।

पितरों के कार्य—

१. पितर अर्थात् मातापिता आचार्यादि कुटुम्बीजनों का कार्य धर्मानुष्ठान से सन्तान की प्राप्ति, पालन और सुशिक्षण देना है। स्वसम्पत्ति और वैचारिक दाय भाग पुत्रों को प्रदान करें, अपने अनुभवों और सदुपदेश से उन्हें लाभान्वित करें।

२. पितर अर्थात् ज्ञानी जन विद्यादान, बौद्धिक विकास, मानसिक स्वस्थता तथा आत्म विकास करके प्रजा को कुमार्गगमन व आत्म हनन से बचाएँ।

३. पितर अर्थात् प्रजापालक जन प्रजा की आवश्यकताएँ पूर्ण करने तथा समाज को सुरक्षित व सुदृढ़ रखने में सहयोगी हों।

४. पितर अर्थात् सैनिक युद्धकला के विकास, राष्ट्ररक्षा, शत्रुदमन करने तथा सन्तानों को वीर साहसी योग्य योद्धा बनाने में रत रहें।

५. पितर अर्थात् सूर्य किरणें प्राणियों के गर्भ को पुष्ट करती और उसे बाहर निकालती हैं, जीवन का विकास, अन्धकार दूर करना, मेघ बनाकर वृष्टि करना, पृथ्वी को उपयोगी बनाए रखना, नष्ट हुए पदार्थों को विभाजित कर यथा स्थान करना, दुर्गन्ध दूर करना,

Scanned by CamScanner

नक्षत्रों को प्रकाशित करना, रोग कृमियों को मारना, ताप देना, शोधन करना आदि इनके कार्य हैं।

६. पितर अर्थात् प्राण, इनका कार्य जगत् में गर्भधारण करना और पिण्ड व ब्रह्माण्ड के नाना कार्य व्यापार करना है।

७. पितर अर्थात् ऋतुएँ, इनका कार्य जीवों को गर्भ में पहुँचाना, धारण करना, वाणी, मन व शरीर के व्यापार, व्यवहार में सहयोगी होना, पदार्थों व शरीरों को सुरक्षित रखना और अपने क्रम से विज्ञान का परिचय करानादि है।

इस प्रकार स्मार्त श्राद्ध समाज के आयुवृद्ध, ज्ञानवृद्ध और कर्मवृद्ध जनों को उनका स्वत्व प्रदान करने के लिए किया गया वैदिक व्यवस्था का महत्त्वपूर्ण अंग है। जिस प्रकार अबोध शिशुओं को आश्रय देने, पालन-पोषण करने की आवश्यकता होती है और माता-पिता उनकी गन्दगी साफ करते, झिड़कियाँ नाज़ नखरे उठाते, नहलाते धुलाते, चिकित्सा द्वारा उन्हें स्वस्थ रखने की कोशिश करते हैं। बालक तरह-तरह की खाने पीने की वस्तुएँ पाने को लालायित रहता है। समाज व परिवार में क्षीण सामर्थ्य वृद्धों की भी दशा ठीक बालकों जैसी ही हो जाती है वे शिथिलेन्द्रिय हो जाने से निसृत शारीरिक मलों को सम्हाल नहीं पाते, स्वयं स्वच्छता पवित्रता बनाए रखने में असमर्थ होते हैं, उनमें चिड़चिड़ापन बढ़ जाता है, उनकी तरह-तरह की भोजनेच्छा होती रहती है। परन्तु वे सब कुछ पाने में असमर्थ होते हैं और अपनी सन्तान या वर्तमान पीढ़ी से ही कुछ पाने की आशा रखते हैं। यह भी सच है कि वृद्धावस्था को अनिवार्य

Scanned by CamScanner

और अपरिहार्य मान कर ही हमारे माता-पिता सन्तान उत्पन्न कर उसे पालते-पोसते और दुःख उठाते हैं ताकि वे भविष्य में समय पड़ने पर उन्हें सहारा दे सकें। पितरों की स्थिति वैसी ही होती है जैसी शरीर के किसी ऐसे घटक की जिसका एक सिरा मृत हो गया है और दूसरा जीवित है तथा शरीर से जुड़ा है। मृत चर्म या नाखून का मृत भाग तो काटा जा सकता है किन्तु जीवित भाग को निकालने से शरीर को कष्ट अवश्य होता है। अतः जब तक वह जीवित है तब तक कुछ न कुछ भोजन भाग तो ग्रहण ही करेगा। परिवार समाज या राष्ट्र में इस पोषक भोजन भाग को ही वेद ने स्वधा नाम दिया है, जिसे ग्रहण करके पितृजन स्वाभाविक मृत्युकाल तक सुखपूर्वक जीते हुए सरलता-पूर्वक मृत्यु लाभ करते हैं। परिवार, समाज और राष्ट्र भी उनको प्रसन्न रखकर दीर्घकाल तक उनके अनुभवों का लाभ प्राप्त करता रहता है। जीवन जीने की इससे उत्तम रीति संसार में अन्यत्र कहीं दृष्टिगोचर नहीं होती, यह मात्र आर्यों की ही जीवन पद्धति है।

अतः पितरों को नहलाना-धुलाना, उनके वस्त्र धोना और मलमूत्र बलगमादि की सफाई करना, उन्हें साफ सुथरा रखना हमारा प्रथम कर्त्तव्य है। पश्चात् उन्हें समय पर श्रद्धापूर्वक उत्तम भोजन देना चाहिए और उनकी आवश्यकताओं व इच्छाओं को पूरा करते हुए उन्हें सन्तुष्ट और तृप्त रखने का यत्न करना चाहिए। पितरों के अनुभव, सदुपदेश और आशीर्वाद प्राप्त करके हमारे लोक व परलोक दोनों सुधरते हैं, यह एक पुण्य कार्य है। यह भी ध्यान रख कर हमें विधिवत् पितृसेवा करनी चाहिए कि एक दिन हमें भी वृद्ध होना है अतः सन्तान के लिए अनुकरणीय उदाहरण भी प्रस्तुत करना होगा। इसलिए पितरों को कभी

Scanned by CamScanner

असहाय, उपेक्षित और दरिद्रावस्था में न रखें, न ही उन्हें एकाकी और तिरोहित करें। उनके समीप समय निकाल कर बैठें उनसे चार मीठी बातें करें, हाथ पाँव दबाएँ, मालिश करें इत्यादि। यह सब बोझ समझकर न करें अपितु मन की पूरी श्रद्धा और प्रीतिपूर्वक करें। वह सन्तान अत्यन्त सौभाग्यशाली है जिसे इस प्रकार पितृसेवा का अवसर मिलता है।

इस प्रकार नित्य श्राद्ध के अतिरिक्त शास्त्रों में पाक्षिक या पार्वण तथा मासिक व वार्षिक श्राद्धों का भी विधान है तथा संस्कार और उत्सवों से पूर्व भी पितरों को सन्तुष्ट तृप्त और सत्कृत करने हेतु श्राद्ध का वर्णन मिलता है। किन्तु यह जीवित पितरों के लिए ही किया जाना चाहिये मरे हुओं के लिए नहीं। दुर्भाग्य से आज जीवितों की उपेक्षा और मृतकों का सत्कार किया जाता है। जैसी कि लोकोक्ति है—

जियत पिता से दंगम दंगा।
मरे पिता पहुँचाएं गंगा॥

और—'घर का शंकर प्यासा मरता बाहर करे जल धारा।' आज तो बस लोग ऐसी पूजा में संलग्न हैं।

आश्विन् मास के श्राद्ध का रहस्य—अभी तक हमने जिस श्राद्ध का वर्णन किया है, वह प्रतिदिन किया जाने वाला श्राद्ध है। इसे तो लोग करते नहीं या फिर लोकलाज वश करते भी हैं तो अश्रद्धा से। कोई विरला ही भाग्यशाली पुरुष होगा जिसके यहाँ प्रतिदिन पितृ पूजन होता होगा। श्राद्ध के नाम से तो आश्विन् कृष्ण प्रतिपदा से अमावस्या तक प्रतिदिन कराए जाने वाले ब्राह्मण भोजन को ही लोग जानते हैं। जिस तिथि को जिसका जो पूर्वज मरा हो उसी तिथि को इन दिनों उस पूर्वज को

Scanned by CamScanner

मात्र एक दिन भोजन पहुँचाने के लिए ब्राह्मणों को भोजन कराने का नाम श्राद्ध मान रखा है। परन्तु यह कार्य आश्विन् मास के इन्हीं दिनों में क्यों किया जाता है? क्या अन्य किसी महीने में पितर भोजन करते ही नहीं? यह इन भोले लोगों को विदित नहीं। वस्तुतः यह भी एक वास्तविक कृत्य का विकृत रूप है जो जीवित पितरों के लिए ही किया जाता था मृतकों के लिए नहीं। वैदिक आर्यों में वर्णाश्रम व्यवस्था प्रचलित थी। सम्पूर्ण समाज ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ व संन्यास इन रूपों में विभक्त होकर कार्य करता था।

वर्षा प्रारम्भ होने पर भ्रमण, व्यापार, युद्धादि सभी कार्य बन्द हो जाते थे। नदी नालों में बाढ़ आ जाती थी, रास्ते भी अवरुद्ध हो जाते थे। इस अवसर पर चारों वर्णों के लोग अपने-अपने घरों ग्रामों या नगरों में उपस्थित रहते थे। संन्यासी वृद्ध किसी एक स्थान में रुककर चातुर्मास बिताते थे, वानप्रस्थ व ब्रह्मचारीगण भी आचार्यों सहित ग्राम या नगर के बाहर समीप ही कहीं आ वसते थे। श्रावण की पूर्णिमा के दिन से जब किसान अपनी अषाढ़ी फसल बोकर निवृत्त हो जाते थे, आर्यों का स्वाध्याय पर्व प्रारम्भ होता था। प्रत्येक नगर ग्राम यज्ञ धूम से सुगन्धित, वेत्रमन्त्रों की ध्वनि से गुंजायमान तथा वेदोपशों के श्रवण से सौभाग्यशाली होते थे। वर्ष भर के स्वाध्याय और जीवन व्यवहार में उत्पन्न शंकाओं और सन्देहों का निराकरण विद्वानों के चरणों में बैठ कर होता था और नवीन-मार्ग दर्शन भी प्राप्त होता था। इस प्रकार समाज अज्ञानमुक्त और शुद्धाचरणयुक्त रहता था। यह कार्य वर्षाकाल पर्यन्त होता था। आश्विन् मास का कृष्ण पक्ष वर्षा का अवसान काल होता था। इस अवसर पर ग्राम व नगरों में पधारे विद्वान् संन्यासी आदि

Scanned by CamScanner

अपने प्रस्थान की तैयारी करते थे। अतः उनकी विदाई के पूर्व पन्द्रह दिन तक गृहस्थी लोग अपने-अपने घरों में क्रम से उन्हें निमन्त्रित करके जिमाते थे और श्रद्धापूर्वक अन्न व धनादि दान में देते थे। आश्विन् की अमावस्या के दिन सबको विदा करते थे। आगामी वर्ष पुनः मिलने की आशा और पुनः पधारने के आग्रह के साथ अश्रुपूर्ण नेत्रों से दी गई विदाई के वे क्षण बड़े ही भावपूर्ण होते थे। इसीलिए इस अमावस्या को पितृ विसर्जनी और पितृ तर्पणी कहा जाता है। यह था आश्विन् मास का जीवित पितृ श्राद्ध जो कि कालान्तर में वर्णाश्रम के संकरीकरण और ब्राह्मणों के वेदविमुख हो जाने से विकृत हो गया है। पुरोहितों ने धन व भोजन के लोभ में यह उपदेश करना प्रारम्भ किया कि आश्विन् में मृतपितरों की तृप्ति के लिए ब्राह्मण भोजन कराना चाहिए। मरे हुओं को स्वर्ग दिलाने और नरक से बचाने के लिए पुरोहित लोग यजमान और यमराज के बीच दलाली करने लगे। मरने के बाद मृतक के पास यदि कुछ पहुँचाना है तो पुरोहितों को वह वस्तु दान कर दो बस वह मृतक को प्राप्त हो जायगी, ऐसा अन्धविश्वास प्रचारित किया गया। इस प्रकार पुरोहित नाम धारियों ने समाज के जनसाधारण से लेकर बड़े-बड़े श्रीमन्तों का माल बड़ी निर्दयतापूर्वक सदियों तक लूटा और जीवितों के श्राद्ध को मृतकों का बनाकर जीवितों की स्वधा स्वयं हड़पने लगे। एक कवि ने इसका बहुत सुन्दर वर्णन किया है—

'ऐसे थे हम होशियारे जमाना।
कि भिजवाते रहते थे मुर्दों को खाना।

बड़ा पेट था या बड़ा डाक खाना।
किया पार्सल हमने जिससे रवाना।

Scanned by CamScanner

जरा देखिए डाकियों का कलेजा।
जमीं का पुलिन्दा फ़लक पर है भेजा।

रसीद आज तक पर किसी की न आई।
वो शै पाने वालों ने पाई न पाई।

बहुत खो चुके जब हम अपनी कमाई।
तो ऋषि ने बताया कि है ये ठगाई।

मिला पार्सल यह तसल्ली है झूठी।
लुटेरों ने वो डाक रस्ते में लूटी।।' बेताब।।

परमेश्वर की कृपा और आर्य जाति के सौभाग्य से महर्षि दयानन्द का आगमन हुआ। उन्होंने इन पाखण्डियों की पोल खोली और श्राद्ध का सत्यस्वरूप हमारे समक्ष प्रस्तुत कर हमें मिथ्या कर्मकाण्डीय शोषण से मुक्ति दिलाई। महर्षि दयानन्द ने कहा हमारे कर्मकाण्ड की प्रामाणिकता वेद से सिद्ध होती है, वेद ही स्वत: प्रमाण हैं और वेद में एक भी मन्त्र ऐसा नहीं जिससे यह सिद्ध होता हो कि मृत पूर्वजों को भोजन पहुँचाना चाहिए अथवा ब्राह्मणों को भोजन कराने से पितरों की तृप्ति होती है। महर्षि दयानन्द के जीवन काल में किसी ने भी यह साहस नहीं दिखाया कि वेद से मृतक श्राद्ध सिद्ध कर सके। परन्तु उनके दिवंगत होने पर उनके विरोधी कुछ चालाक संस्कृतज्ञों ने वेदज्ञ होने का दावा किया और वेद के कुछ मन्त्र संग्रहीत करके उनसे मृतक श्राद्ध सिद्ध करने का असफल प्रयत्न किया। एक पण्डित ने वेद विज्ञान के नाम पर एक शब्दजाल बुना और मृतक श्राद्ध, शाल-ग्रामपूजा, यज्ञों में पशुवध और मांस भक्षण और स्वसम्प्रदाय की मूर्खतापूर्ण मान्यताओं और क्रियाकलापों को वेद का विज्ञान लिखा महर्षि दयानन्द ने जिसे पाखण्ड कहा उसे इन्होंने विज्ञान

Scanned by CamScanner

बताया और इस प्रकार वेद को दूषित किया। आज भी उसी सरणि पर चल रहे कुछ लोग वेदविद् के छद्म रूप में वेद पर प्रहार कर रहे हैं। हम यहाँ संक्षेप में एक दो मन्त्रों की बानगी प्रस्तुत करके उनका सत्यार्थ भी लिखेंगे जिनसे ये लोग मृतक श्राद्ध सिद्ध करते हैं।

१. ये निखाता ये परोप्ता ये दग्धा ये चोद्धिता।
सर्वांस्तानग्न आवद्ध पितॄन् हविषे अत्तवे॥

—अथर्व १८-२-३४

अर्थ—जो भूमि में गाड़े गए, पानी में बहाए गए, अग्नि में जलाए गए और ऊपर रखे गए पितर हैं, हे अग्नि ! उन्हें हवि खाने के लिए बुलाओ।

२. ये अग्निदग्धा ये अनग्निदग्धा मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते।
त्वं तान् वेत्थ यदि ते जातवेदः स्वधया यज्ञं स्वधितिं जुषन्ताम्।

—अथर्व १८-२-३५

अर्थ—जो अग्नि में जलाए गए और जो नहीं जलाए गए स्वर्ग के बीच स्वधा के द्वारा आनन्दित हो रहे हैं, उन पितरों को हे जातवेद ! यदि तू जानता है तो वे स्वधा के द्वारा स्वधिति यज्ञ का सेवन करें।

३. ये अग्निष्वात्ता ये अनग्निष्वात्ताः
मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते।

—यजु० १९-६०

अर्थ—जिनको अग्नि ने खा लिया है और जिन्हें नहीं खाया.....इत्यादि—

इन मन्त्रों के उक्त अर्थ पौराणिक पण्डितों द्वारा किए गए हैं जो प्रकरण विरुद्ध, अशास्त्रीय एवं छल युक्त हैं। सर्वप्रथम इन

Scanned by CamScanner

लोगों को वेद से ऐसे मन्त्र प्रस्तुत करना चाहिए जिनमें पितर का अर्थ मरे हुए पूर्वज होता हो। हमारा दावा है कि वेदों में से एक भी ऐसा मन्त्र कोई नहीं दिखा सकता जिससे यह सिद्ध होता हो कि मृतकों को पितर कहते हैं और उनसे हमारा सम्बन्ध रहता है अथवा पितरों की तृप्ति के लिए ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए या अन्य किसी प्रकार उन्हें भोजन पहुँचाना आवश्यक है।

जहाँ तक सम्बन्ध का प्रश्न है तो पिता पुत्रादि सम्बन्ध जीवितों के साथ ही होता है। सम्बन्ध न तो केवल शरीर के साथ होता है और न केवल आत्मा के साथ ही होता है। जब तक दोनों संयुक्त होते हैं तभी तक सम्बन्ध भी रहता है। दोनों के पृथक् होते ही सम्बन्ध भी समाप्त हो जाता है। मृत शरीर तो जला दिया जाता है और जीवात्मा स्वकर्मानुसार अन्य शरीर प्राप्त कर लेता है। देखिए प्रमाण—

१. **वायुरनिलममृतमथेदं भस्मांतं शरीरम् ।।**

—यजु० ४०। १६

अर्थात् आत्मा अभौतिक, अमर है और शरीर भस्म होने वाला है इत्यादि।

२. **अयमात्मेदं शरीरं निहत्याविद्यां**
गमयित्वान्यन्नवतरं कल्याणतरं रूपं
कुरुते पित्र्यं वा गान्धर्वं वा दैवं वा
प्राजापत्यं वा ब्राह्मं वान्येषां व। भूतानाम् ।।

—(बृहदारण्यकोपनिषद् ४-४-४)

अर्थात् यह आत्मा इस शरीर को छोड़कर अविद्यावश अन्य नवीन शरीर धारण करता है।

Scanned by CamScanner

३. तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही।

—गीता २-२२

अर्थात् देही (आत्मा) पुराने शरीर को छोड़ अन्य नया शरीर धारण कर लेता है। इस नए शरीर को धारण करने में कितना काल लगता है इसके लिए देखिए उपनिषद् क्या कहता है—

'यथा तृण जलौका हि पदचात्पादं तदोद्धरेत्।
स्थितिरग्रस्यपादस्य यदा नाता दृढ़ा भवेत॥'

—बृहदारण्यक ४-४

अर्थ—जैसे तृण जलौका (घास पर चलने वाली जोंक) अपने पिछले पैर तभी छोड़ती है जब अगले पैरों को आगे जमा लेती है। इसी प्रकार जीव दूसरे शरीर के माध्यम को पकड़ कर ही पूर्व शरीर को छोड़ता है। अतः सिद्ध है कि देहान्तर ग्रहण में इतना ही समय लगता है जिसे मापा नहीं जा सकता।

अब हम उक्त मन्त्रों का सत्यार्थ प्रस्तुत करते हैं।

१. ये निखाता ये परोप्ता ये दग्धा ये चोद्धिताः।
सर्वांस्तानग्न आवह पितॄन् हविषे अत्तवे॥

—अथर्व० १८-२-३४

यह मन्त्र अन्त्येष्टि प्रकरण का है यहाँ उन चार प्रकार की सूर्य रश्मियों को पितर कहा गया है जो अग्नि के सम्पर्क से आमन्त्रित होकर मृत शरीरस्थ पृथ्वी, अग्नि, जल, वायु आदि के अंशों को उनके मूल स्थान तक पहुँचाकर लोक शोधन करती हैं।

अर्थ—(ये निखाता) जो किरणें भूमिगत हो पृथ्वी को आकाश में ध्रुव रखती हैं (ये परोप्ता) जो जलों में प्रसरित होकर उन्हें प्रवाहित करती हैं (ये दग्धा) जो दीप्तिमान् विद्युत्

Scanned by CamScanner

और अग्नि को दीप्त करती हैं (ये चोद्धिता) जो ऊपर स्थित होकर वायु को संचालित करती हैं। उन रक्षक किरणों को पितृ मेध यज्ञाग्नि हवि ग्रहणार्थ प्राप्त कराए।

यदि मनुष्य पितर परक अर्थ करना चाहें तो भी इस मन्त्र का अति उत्तम अर्थ होगा, देखिए—

(ये निखाता) जो भूमिगत अर्थात् जनसामान्य से पृथक् गिरिकन्दराओं में बसने वाले विरक्त जन, (ये परोप्ता) जो प्रजाओं के मध्य प्रसरणशील हैं, (ये दग्धाः) जो परिपक्व ज्ञान वाले हैं, (ये उद्धिता च) और जो उच्च पदस्थ सामान्य संसारी जनों की अपेक्षा मोहादि से विरत जीवन मुक्तादि लोग हैं ऐसे पितरों को विद्वान् पुरोहित शोकाकुल परिवार वा समाज में सत्कारपूर्वक उपदेशार्थ लावें इत्यादि।

२. ये अग्निदग्धा ये अनग्निदग्धाः मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते।
त्वं तान् वेत्थयदिते जातवेदः स्वधया यज्ञं स्वधितिं जुषन्ताम्।

—अथर्व १८-२-३५

इस मन्त्र का अर्थ इस प्रकार करते हैं—'जो अग्नि में जला दिये गए हैं और जो नहीं जलाए गए, जो स्वर्ग लोक में स्वधा के साथ आनन्द भोग रहे हैं, हे अग्नि यदि तुम उन्हें जानते हो तो वे स्वधा के साथ हमारे यज्ञ को प्राप्त करें इत्यादि।

समीक्षा—यहाँ भी सूर्य रश्मियों को ही पितर कहा है क्योंकि वही प्रकरण चल रहा है। यहाँ सूर्य की उष्ण और शीत किरणों का वर्णन है।

अर्थ इस प्रकार होगा—(ये अग्निदग्धाः) जो अग्नि से दीप्त सूर्य रश्मियाँ हैं, (ये अनग्निदग्धाः) जो अग्नि से दीप्त नहीं है अर्थात् शीत रश्मियाँ हैं, जो (मध्येदिवः) द्यौलोक के मध्य में

Scanned by CamScanner

स्थित (मादयन्ते) 'मद तृप्तियोगे' चुरादिगण—तर्पयन्ति प्राणियों को तृप्त करती हैं।

(जातवेदः) प्रत्येक पदार्थ में विद्यमान अग्नि (यदि त्वं तान् वेत्थ) क्योंकि तुम उन्हें प्राप्त होते हो, अतः वे इस अन्त्येष्टि कर्म रूप (स्वधिति यज्ञम्) कष्टदायक यज्ञ का (स्वधया जुषन्ताम्) स्वधारक शक्ति से सेवन करें।

द्वितीय अर्थ—(ये अग्निदग्धाः) जो आहिताग्नि अग्निहोत्र करने वाले अथवा परिपक्व ज्ञान वाले ज्ञानी जन, (ये अनग्नि दग्धाः) जो अग्निहोत्र न करने वाले संन्यासीगण (मध्ये दिवः) ज्ञान लोक में (स्वधया) अपने गृहीत ज्ञान और उपहार भाग से (मादयन्ते) तृप्त होकर हमें तृप्त करते हैं। (जातवेदस्) ज्ञानी पुरोहित (त्वं तान् यदि वेत्थ) क्योंकि तुम उन्हें जानते हो अतः वे सभी अपनी (स्वधया) ज्ञान शक्ति के साथ मेरे इस (स्वधितिं यज्ञं) कष्टदायक अन्त्येष्टि यज्ञ के समय जुषन्ताम् उपस्थित हों। अतः यहाँ ज्ञानी विरक्तों को अन्त्येष्टि के पश्चात् यज्ञ में उपदेशार्थ बुलाकर परिवार समाज को शोक मुक्त करने की चर्चा है। तथा सूर्य रश्मियों के द्वारा जलवायु और पृथ्वी के शोधन का वर्णन किया गया है। जैसे सूर्य की उत्तरायण व दक्षिणायन की उष्ण, शीत दो प्रकार की रश्मियाँ यज्ञ के साथ संसार का शोधन कर उसे तृप्त करती हैं। उसी प्रकार संन्यासी व गृहस्थ (देवयानी व पितृयानी) ज्ञानीजन परिवार, समाज व राष्ट्र का उपदेशादि के द्वारा शोधन करते रहते हैं और शोक सन्तप्त को शान्त करते हैं। हमारा किया मन्त्रार्थ शास्त्र सम्मत है, अटकल पच्चू नहीं।[1]

---

१. ब्राह्मणाः साग्निहोत्राश्च तथैव च निरग्नयः। महाभारत वनपर्व अ० २४-१४-१५।

Scanned by CamScanner

३. ये अग्निष्वात्ताः येऽनग्निष्वात्ताः
मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते।

—यजु० १९-६०

इस मन्त्र में आए अग्निष्वात्त पद का अर्थ किया है 'अग्नि में जलाए गए जिनका अग्नि ने स्वाद चखा है।' इस अर्थ की पुष्टि में निम्नलिखित प्रमाण भी दिया है, जो इनकी विद्वत्ता का अच्छा परिचय देता है।

यानग्निरेव दहन् स्वदयति ते पितरोऽग्निष्वात्ताः।

शतपथ० २-६-१-७

इस वाक्य का अर्थ किया 'जिन्हें अग्नि ही जलाती हुई स्वाद लेती है वे पितर अग्निष्वात्त हैं।' धन्य हो महाराज।

देखिए इसका सत्यार्थ—

(यान्) जिनको (अग्निरेव दहन्) अग्नि मात्र जलती हुई (स्वदयति) भोजन खिलाती है, वे अग्निष्वात्त पितर हैं। अर्थात् अग्निहोत्र न कर केवल भोजन पका कर खाने वाले गृहस्थ लोग।

प्रमाण लीजिए—

'ये वा अयज्वानो गृह मेधिनः ते पितरोऽग्निष्वात्ताः।

—तैत्तिरीय ब्राह्मण १-६-९-६

अर्थात् यज्ञ न करने वाले गृहस्थ लोगों को अग्निष्वात्ता पितर कहते हैं। ये कुछ नमूने हमने पाठकों की जानकारी के लिए प्रस्तुत किए हैं। धूर्त वञ्चक जन इस प्रकार के अनेक मन्त्रों, ब्राह्मण वचनों व स्मृति श्लोकों का कल्पित और छलपूर्ण अर्थ करते हैं जो सर्वथा मिथ्या हैं। वस्तुतः श्राद्ध जीवित लोगों के लिए ही करणीय है, मृतकों के नाम पर ब्राह्मणों को भोजन देने

Scanned by CamScanner

और उससे पितरों की तृप्ति होने की बात सर्वथा मिथ्या और धूर्तप्रवर्तित पाखण्ड है। वैदिक कर्मकाण्ड की मूल प्रकृति को न समझने के कारण ही लोगों ने इसे अपना रखा है। सभ्य पुरुषों को इसे त्याग देना चाहिए। वेद में पितरों को भोजन करने, उपदेश और रक्षा करने के लिए बुलाने का विधान है जो यह सिद्ध करता है कि पितर नाम जीवितों का ही है।

देखिए—

आयन्तु नः पितरः सोम्यासोऽग्निष्वात्ताः पथिभिर्देवयानैः।
अस्मिन् यज्ञे स्वधयामदन्तोऽधिब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान्॥

—यजु० १९-५८

अर्थात् शान्त चित्त और अग्नि विद्या के विद्वान् हमारे पितर देवयान मार्ग से अर्थात् ज्ञान के मार्ग से आकर इस यज्ञ में हमें उपदेश करें और हमारा सत्कार स्वीकार कर हमारी रक्षा करें। स्पष्ट है कि उपदेश और रक्षा जीवित लोग ही कर सकते हैं मृतक नहीं।

Scanned by CamScanner

मृतक श्राद्ध का प्रारम्भ

वैदिक कर्मकाण्ड में श्राद्ध जीवित जागृत जनों के लिए था, मृतकों के लिए नहीं, और वह भी पितृयज्ञ के रूप में स्मार्त कर्मकाण्ड के रूप में ही प्रचलित था। इसे मृतकों का कृत्य बनाने में इस लोलुप स्वार्थी ब्राह्मणों का हाथ है। श्री पी. वी. काणे अपने धर्मशास्त्र का इतिहास नामक ग्रन्थ में लिखते हैं—

'श्राद्ध' शब्द किसी भी प्राचीन वैदिक वचन में नहीं पाया जाता, यद्यपि पिण्ड पितृयज्ञ (जो आहिताग्नि द्वारा प्रत्येक मास की अमावस्या को सम्पादित होता था), महापितृयज्ञ (चातुर्मास या ऋग्वेद में सम्पादित) एवं अष्टका प्रारम्भिक वैदिक साहित्य में ज्ञात थे।[1]

अत्यन्त तर्कसंगत एवं सम्भव अनुमान यही निकाला जा सकता है कि पितरों से सम्बन्धित बहुत ही कम कृत्य उन दिनों किए जाते थे, अतः किसी विशिष्ट नाम की आवश्यकता नहीं समझी गई किन्तु पितरों के सम्मान में किए गए कृत्यों की संख्या में जब अधिकता हुई तो श्राद्ध की उत्पत्ति हुई।[2]

कई लोग मनु को श्राद्ध का प्रवर्त्तक मानते हैं परन्तु महाभारत शान्ति पर्व (३४५—१४ से २१) एवं विष्णुधर्मोत्तर पुराण में आया है कि श्राद्ध प्रथा का संस्थापन विष्णु के वराह

---

१. धर्म शास्त्र का इतिहास भाग ३ पृ० १२०५

२. वही पृ० १२०५

अवतार के समय हुआ। इस प्रकार अनुमान लगाया जा सकता है कि ईसा से कई शताब्दीपूर्व श्राद्ध प्रथा का प्रतिष्ठापन हो चुका था।'[3]

एक स्थान पर वे लिखते हैं—'आर्यसमाज श्राद्ध प्रथा का विरोध करता है और ऋग्वेद में उल्लिखित पितरों को वानप्रस्थाश्रम में रहने वाले लोगों के अर्थ में लेता है। यह ज्ञातव्य है कि वैदिक उक्तियाँ दोनों सिद्धान्तों का समर्थन करती हैं। शतपथ ब्राह्मण ने स्पष्ट रूप से कहा है कि यज्ञकर्त्ता के पिता को दिया गया भोजन इन शब्दों में कहा जाता है—यह तुम्हारे लिए है' इत्यादि।[4] और कि—

'पितृ शब्द का अर्थ है पिता, किन्तु 'पितर' शब्द दो अर्थों में प्रयुक्त हुआ है (१) व्यक्ति के आगे के तीन मृत पूर्वज एवं (२) मानव जाति के आरम्भिक या प्राचीन पूर्वज जो एक पृथक् लोक के निवासी हैं।'[5]

श्री पी. वी. काणे के अनुसार जो तथ्य हस्तगत होता है वह यह है कि—

१. मृतक श्राद्ध का प्रचलन वैदिक काल में नहीं था यह ईसा से कुछ शताब्दी पूर्व से प्रचलित हुआ।

२. वैदिक काल में श्रौत यागों की दीक्षा लेने वाला व्यक्ति पिण्ड पितृयाग और महापितृयज्ञादि करता था उसी का नाम भविष्य में श्राद्ध हो गया और पिण्डपितृयाग में यजमान अपने मृत पिता को पिण्ड देता था।

Scanned by CamScanner

३. पितर का अर्थ व्यक्ति के तीन मृतपूर्वज और प्रारम्भिक या प्राचीन पूर्वज जो किसी पृथक् लोक में निवास करते हैं।

हम उक्त विद्वान् के श्रम को सम्मान देते हुए कहते हैं कि 'मृतक श्राद्ध' और 'पितर' के सम्बन्ध में उन्होंने जो निश्चय किया है वह उनके दुरधीयान होने का परिणाम है। उन्होंने अपने कथन की पुष्टि में जो ऋग्वेद और अथर्ववेद के प्रमाण दिए हैं वे उनके कथन की पुष्टि नहीं करते हम आगे चल कर उन्हें उद्धृत कर सत्यार्थ प्रदर्शित करेंगे। फिर भी यह तो सत्य ही है कि मृतक श्राद्ध वैदिक काल में बिल्कुल नहीं होते थे। हम अपने अध्ययन के आधार पर बलपूर्वक कहते हैं कि 'मृतक श्राद्ध' को प्रथा का प्रारम्भ वर्णाश्रम व्यवस्था भंग होने के पश्चात् और वैष्णव सम्प्रदाय के प्रारम्भ होने पर हुआ। निश्चय ही यह वैष्णवों का दुष्कृत्य है। वैष्णवों ने सभी स्मृतियों, सूत्र ग्रन्थों और अन्य रामायण महाभारतादि ऐतिहासिक ग्रन्थों में अवतारवाद और मृतक श्राद्ध का प्रक्षेप किया है। कालान्तर में यज्ञों में पशु वध के समर्थकों ने श्राद्ध में मांस को अनिवार्य कर दिया है। श्राद्ध साहित्य का अवलोकन करने से ही यह विदित हो जाता है कि इनके लेखकों में ईर्ष्या द्वेष तथा उत्कृष्ट-निष्कृष्ट की भावना भरी थी और इसीलिए इनमें विरोधी विचार मिलते हैं, मतैक्य नहीं है। इनके द्वारा मृतक श्राद्ध की प्रशस्ति में जो कुछ लिखा गया, वह सब अनर्गल प्रलाप है। हम इसका भी किञ्चित् दिग्दर्शन करायेंगे।

सर्वप्रथम हम श्री पी. वी. काणेजी की उस मान्यता पर विचार करेंगे कि 'वैदिक पिण्डपितृयाग में मृतकों को पिण्ड दिया जाता था। हमारा कहना है कि श्रौतयागों में कहीं भी ऐसा

Scanned by CamScanner

विधान नहीं था परन्तु आगे चल कर पिण्डपितृयाग में ही मृतक श्राद्ध प्रक्षिप्त किया गया ताकि मृतक श्राद्ध को वैदिक सिद्ध किया जा सके। परन्तु ऐसा करने वाले निश्चय ही वैदिक श्रौतयागों की मूल प्रकृति को नहीं समझते थे और इसीलिए उनका यह दुष्कृत्य पकड़ में आ गया।

वैदिक कर्म काण्ड में दो प्रकार के कृत्य होते हैं या उसके दो भेद हैं—१. श्रौत २. स्मार्त। श्रौत कर्मकाण्ड में सम्पादित कृत्य वेद में साक्षात् प्राप्त हैं, उनमें अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेध पर्यन्त यज्ञों की गणना होती है। श्रौत कर्म स्वतः प्रमाण हैं, जब कि स्मार्त कर्म श्रौत कर्मों पर अवलम्बित हैं। श्रौत कर्म में किसी शरीरधारी देवता के लिए यज्ञ नहीं किया जाता। वैदिक कर्मकाण्ड में विग्रहवती (शरीर वाले) देवता का सर्वथा निषेध है।[६]

श्रौत कर्म देव कृत्य हैं मानवी नहीं। देवों ने जिस प्रकार सृष्टि रचना के लिए परस्पर उद्योग किया, उन्हीं का वर्णन श्रौत यागों में है। देवों के कृत्य का नाम वेद में यज्ञ है। देवों से तात्पर्य अग्नि, वायु, जल, पृथ्वी, सूर्य, चन्द्रादि पदार्थों तथा सृष्टिगत विभिन्न विभागों की अधिष्ठात्री शक्तियों से है जो मुख्यतया ८ वसु ११ रुद्र और १२ आदित्य १ इन्द्र और १ प्रजापति इस प्रकार कुल ३३ हैं, शेष इन्हीं के भेद प्रभेद हैं। देवों के द्वारा किए गए यज्ञ का अभिनय उनकी प्रतीकें या प्रतिनिध रखकर श्रौत यागों में किया जाता है।[७] वेदों में देवानुकरण का ही

---

६. मीमांसा १०-४-३ पर भट्टदीपिका (खण्ड देव) तथा पूना प्रवचन (उपदेश मंजरी) चौथा व्याख्यान—स्वा० दयानन्द

७. शतपथ भाष्य (स्वामी समर्पणानन्द) प्रथम भाग पृ० ९ से १२ तथा परिशिष्ट पृ० ४०३

Scanned by CamScanner

मानवों के लिए उपदेश है। अतः ऋषियों ने 'यद् देवा अकुर्वन् तत् करवाणि' अर्थात् जो देवों ने किया वही मैं करूँ के आधार पर श्रौत यागों के रूप में देव कृत्यों को धरती पर प्रतिष्ठित किया। ताकि मनुष्य उनसे अपने कर्त्तव्य का निर्धारण कर सके।

इन्हीं श्रौत कर्मों के अनुसार या इन्हें प्रमाण मान कर ही स्मार्त कृत्यों का सृजन किया गया। श्रौत कर्मों में तो चूंकि देव लोग साक्षात् प्राप्त नहीं थे अतः उनकी प्रतीकें रख कर उनका अभिनय किया गया किन्तु स्मार्त कर्मों में उन प्रतीकों के प्रत्यायनीयों को व्यवहार में अपनाने का विधान है, न कि ज्यों का त्यों नकल करने का। उदाहरण के लिए श्रौत कर्म में आपः को पत्नी और अग्नि को पति रूप में प्रस्तुत किया गया परन्तु स्मार्त में उसका अर्थ वास्तविक पति-पत्नी होगा। श्रौत कर्म में यजमान देव प्रतिनिधि इन्द्र का प्रतीक है परन्तु स्मार्त में मनुष्यों का प्रतिनिधि मुख्य कार्यकर्ता गृहस्थ होगा। यह है वैदिक कर्मकाण्ड की मूल प्रकृति। वर्तमान में जो पौराणिक कर्मकाण्ड शरीरधारी देवताओं की पूजादि के रूप में प्रचलित है वह पूर्णतया अवैदिक है और पाखण्डमात्र है। व्यावहारिक जीवन में उसका कोई लाभ नहीं।

अब आते हैं उक्त पिण्ड पितृयाग पर, जहाँ से मृतक श्राद्ध का प्रणयन किया गया। पिण्ड पितृयाग भी एक श्रौत कर्म था अर्थात् देव कृत्य था मानवी नहीं। इसमें देव अपने पितरों को पिण्ड अर्थात् भोजन ग्रास व जल प्रदान करते हैं। देव तो आधिदैविक जगत् में बिना प्रमाद किए अपने पितरों को भोजन देते ही रहते हैं परन्तु इसे समझाने के लिए कि किस प्रकार वे ऐसा करते हैं और किस भावना से करते हैं, इस पिण्ड पितृयाग

Scanned by CamScanner

का अभिनय किया जाता है ताकि मनुष्य भी देवों की तरह ही अपने पितरों को भोजन पानी देता रहे। पिण्ड पितृयाग में ऋतुओं को ही देवों का पितर कहा गया है। यह बात वहाँ पर ही शतपथ व तैत्तिरीय ब्राह्मण में लिखी हुई है। वहाँ पर कुशों को बिछा कर ऋतुओं को ही बिठाया जाता है, ऋतुओं को प्रसन्न करता है। ऋतुएँ छः होती हैं अतः उन्हें छः बार नमन करता है। उनके हाथ धुला कर उनके सामने पिण्ड रखता है, उनसे भोजन की प्रार्थना करता है फिर उन्हें हाथ मुँह धुलवाकर उनसे कृपा बनाए रखने तथा सुख व समृद्धि का आशीर्वाद देने को कहता है फिर उन्हें विदा करता है।

यह सारा नाटक प्रतीकों के माध्यम से यजमान करता है। पश्चात् उस शेष भात को यज्ञ कराने वाले ऋत्विक् ब्राह्मणों के साथ बैठ कर यजमान भोजन के रूप में बाँटता है और स्वयं भी खाता है।[८]

यह है पिण्ड पितृयज्ञ। इसका स्मार्त स्वरूप ही मनु ने पञ्च महायज्ञों में से एक 'पितृयज्ञ' के रूप में वर्णन किया है। इसका व्यावहारिक रूप यही होगा कि अपने जीवित पितरों को आसन बिछाकर बिठाएँ उनके हाथ धुला कर उनके सामने भोजन रखें और भोजन करने की प्रार्थना करें। उनके तृप्त होने पर हाथ धुलाएँ और आशीर्वाद लें इत्यादि। वैदिक काल में यही पितृयज्ञ का स्वरूप था।

परन्तु कालान्तर में श्रौत कर्मकाण्ड का स्वरूप विकृत हुआ और उसे देवों को प्रसन्न करने वाला मानवी पूजापाठ समझ लिया गया उसमें पशु याग प्रकरण को पशु का बलिदान समझ कर

Scanned by CamScanner

पशु वध करने लगे। इसी प्रकार पिण्ड पितृयाग में ऋतुओं की बजाय यजमान के मृत पिता को पिण्ड दिलाने लगे। यही नहीं इसे मानवी कृत्य भी घोषित कर दिया और भात के स्थान में तर माल खाने का विधान घुसेड़ दिया। जो मांसाहार प्रिय थे उन्होंने मांस को श्राद्ध का आवश्यक अंग लिख दिया। वहाँ पिण्ड पितरों के भोजन का प्रतीक था, यहाँ मृत पितरों के लिए पिण्ड को साक्षात् भोजन बना कर रख दिया। इसे ही कहते हैं अन्धानुकरण।

तैत्तिरीय ब्राह्मण में सबसे पहले इसे देव कृत्य के स्थान पर मनुष्यों का यज्ञ कह कर इसे मृतात्माओं का कहा गया है, यहीं से प्रक्षेप का प्रारम्भ और मृतक श्राद्ध का जन्म होता है। महर्षि याज्ञवल्क्य के काल तक ब्राह्मण ग्रन्थों का और वैदिक श्रौतयागों का स्वरूप अत्यन्त विकृत हो चुका था, शतपथ में इसके भूरिशः प्रमाण मिलते हैं।

यदि श्री पी. वी. काणे के अनुसार यह माना जावे कि शतपथ में यजमान अपने मृत पिता को पिण्ड देता है तो इसका तात्पर्य यह हुआ कि श्रौत याग की दीक्षा वही ले सकता है जिसका पिता मर गया हो। क्योंकि पिण्ड पितृयाग तो प्रत्येक आहिताग्नि ही करता है, अन्य किसी को अधिकार नहीं। जिस यजमान का पिता जीवित है वह भी तो पिण्ड पितृयाग करता है। अतः मृतक को पिण्ड देने का विधान सत्य नहीं है।

पिण्ड का अर्थ भोजन का ग्रास होता है और उदक का अर्थ जल और इन्हें जीवित ही खाते पीते हैं मृत नहीं। देखिए प्रमाण—कुन्ती कृष्ण के द्वारा युधिष्ठिर को सन्देश भेजते हुए कहती है—

Scanned by CamScanner

'ततो दुःखतरं किन्नु यदहं हीन बान्धवा ।
पर पिण्डमुदीक्षेवैत्वां सूत्वा मित्रनन्दनम् ।।

—महाभारत उद्योग पर्व अ० १३१

अर्थ—इससे बढ़ कर और क्या दुःख हो सकता है कि मैं बान्धवों से हीन होकर तुझ जैसे मित्र रंजक पुत्र को जन्म देकर भी परपिण्ड (दूसरे के भोजन) की ओर देख रही हूँ ।

इस प्रकार महाभारत में अन्यत्र भी पिण्ड शब्द भोजन भाग के अर्थ में जीवितों के लिए ही आया है ।

अब हम उस प्रकरण को लेते हैं जिसमें श्री पी. वी. काणे का कहना है कि वेद में पितर का अर्थ तीन मृत पूर्वज या प्राचीन आरम्भिक पूर्वज जो किसी पृथक् लोक में निवास करते हैं । हमारा कहना है कि 'पितर' शब्द उक्त अर्थ में चारों वेदों में कहीं नहीं पाया जाता । श्री काणे ने जिन मन्त्रों की ओर संकेत किया है हम उन्हें यहाँ उपस्थित करते हैं । 'पितर' शब्द का अर्थ तीन मृत पूर्वज हैं, इसके लिए श्री काणे ने कोई प्रमाण नहीं दिया । दूसरे अर्थ के लिए उन्होंने ऋग्वेद १०-१४-२, १०-१५-२, ९-९७-३९ के प्रमाण दिए हैं, लीजिए वे मन्त्र और उनका अर्थ ।

१. यमो नो गातुं प्रथमो विवेद नैषा गव्यूतिरपभर्तवा उ ।
यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुरेना जज्ञानाः पथ्या अनु स्वाः ।।

—ऋग्वेद मं. १० सू. १४ मं. २

अर्थ—(यमो नो गातुं प्रथमो विवेद) यम अर्थात् काल (समय) ने हमारी जीवनगति को प्रथम से ही प्राप्त कर रखा है । (एषा गव्यूतिर नापभर्तवा उ) यह काल मार्ग छोड़ा नहीं जा सकता । (यत्रा न पूर्वे पितरः परेयुः) जहाँ से हमारे पूर्वज

Scanned by CamScanner

लोग चलते आए हैं। (एना जज्ञानाः स्वाः पथ्या अनु) इसी मार्ग से सभी उत्पन्न प्राणी अनुगमन करते हैं। इति।

इस मन्त्र में तो काल मार्ग से पूर्व के, वर्तमान के और आगे उत्पन्न होने वाले सभी प्राणियों के यात्रा करने की चर्चा है। कहीं भी प्राचीन पूर्वजों के लोक की चर्चा नहीं है।

२. **इदं पितृभ्यो नमो अस्त्वद्य ये पूर्वासो य उपरास ई युः।**
ये पार्थिवे रजस्या निषत्ता ये वा नूनं सुवृजनासु विक्षु॥

—ऋ. १०-१५-२

अर्थ—(पितृभ्यः इदं नमोऽस्तु) पितरों के लिए यह यज्ञ हो, (अद्य ये पूर्वासो य उपरास ई युः) आज तो पितर पूर्व से प्राप्त हैं या पश्चात् प्राप्त हों। (ये पार्थिवे रजस्या निषत्ता) जो पितर पृथ्वी लोक में अर्थात् मातृ कुल में या गृहस्थ में विद्यमान हैं, (ये वा नूनं सुवृजनासु विक्षुः) और जो अन्तरिक्ष लोक अर्थात् लोक में प्रजाओं के साथ प्रतिष्ठित हैं। इति।

यहाँ नमः का अर्थ यज्ञ होगा देखिए शतपथ २।४।२।२४ (यज्ञो वैनमः) सत्कार अर्थ भी हो सकता है। लोक में पृथ्वी अन्तरिक्ष और द्यौ का अर्थ ब्रह्मचर्य गृहस्थादि आश्रम होता है। अतः यहाँ यह कहा गया है कि घर और बाहर के सभी वृद्ध जनों का सत्कार और पितृयज्ञ रूप श्राद्ध होना चाहिए।[९]

---

९. यद् गार्हपत्य मुपतिष्ठते पृथ्वीम् तदुपतिष्ठते। शतपथ (२-६-४-६)
गृहा वै गार्हपत्य : (शतपथ १-१-१-१९), अन्तरिक्ष लोको
यदन्वाहार्य पचन : (पड्विंशं ब्रा० १-५) दम इति अन्वाहार्य पचनः
(जैमि० उ० ४-२६-१५)
यदाहवनीयं उपतिष्ठते तद् द्यौरुपतिष्ठते।

Scanned by CamScanner

इस मन्त्र का दूसरा अर्थ होगा—

'जो पूर्व पश्चिम से प्राप्त तथा पृथ्वी और अन्तरिक्ष में प्रतिष्ठित सूर्य किरणें हैं उन्हें यज्ञ द्वारा उपयोगी बनावें।' यहाँ पितर का अर्थ सूर्य की किरणें होगा।[१०]

३. स वर्धिता वर्धनः पूयमानः
सोमो मीढ्वाँ अभि नो ज्योतिषावीत्।
येना नः पूर्वे पितरः पदज्ञाः
स्वर्विदो अभि गा अद्रि मुष्णन्॥

—ऋ० ९-९७-३१

अर्थ—(स वर्धिता) वह सबको बढ़ानेहारा (वर्धन) स्वयं बृहत् है (पूयमानः सोम) पवित्र आनन्दरस रूप परमेश्वर (मीढ्वान्) सुखवृष्टि कारक (ज्योतिषा) ज्ञान द्वारा (अभ्यावीत्) रक्षा करे। (येना) जिससे (नः पूर्वे पितरः) हमसे पूर्व के ज्ञानी जन (पदज्ञा स्वर्विदः) पदार्थ विद्या और सुख विशेष वा स्वतन्त्रता वा मोक्ष के जानकार (अद्रिमुष्णन्) चित्तवृत्ति का निरोध कर गुहा में छिपी (अभिगाः) वेदवाणी का साक्षात्कार किया था।

हमने वे तीनों मन्त्र अर्थ सहित सप्रमाण प्रस्तुत किये हैं, इनमें कहीं भी उक्त मान्यता सिद्ध नहीं होती। हाँ हमने जितने अर्थ ऊपर 'पितर' शब्द के शास्त्रों से दिखलाए हैं, उनके निवास स्थान को 'पितर लोक' कह सकते हैं, कहते हैं।

वेदों में जो यह वर्णन मिलता है कि मृत जीव को अग्नि पितरों को देता है और पितर यम के साथ पितृलोक में जीव को ले जाते हैं, वहाँ जीव स्वधा के साथ विचरण करता है। उसका

Scanned by CamScanner

शास्त्र सम्मत सत्य अर्थ यही है कि अग्नि जो पृथ्वी स्थानी है उसके माध्यम से सूर्यकिरणें और चन्द्रकिरणें जीव को अपनी स्वधा अर्थात् जलीयांश के साथ एक शरीर से दूसरे शरीर में पहुँचाती रहती हैं।

इस कार्य में यम अर्थात् काल और वायु भी सहयोगी होते हैं, इत्यादि।

वेदों में और वैदिक कर्मकाण्ड में कहीं भी प्रेतपूजा, पशुवध और अभिचारादि पाप कर्मों का विधान नहीं है। मूर्तिपूजा के लिए भी कहीं अवकाश नहीं है। ये सारे कुकृत्य वैदिक धर्म विरोधी साम्प्रदायिक धूर्त्तों के द्वारा प्रक्षेप किए गए हैं।

मृतक श्राद्ध की कुछ मनोरंजक बातें

जीवित पितरों के श्राद्ध के स्थान पर मृतक श्राद्ध रूप प्रपञ्च खड़ा करने के लिए जहाँ स्मृतियों, सूत्र ग्रन्थों व इतिहासादि में प्रक्षेप डाले गए वहाँ पृथक् से ग्रन्थ भी लिखे गए जिनमें यह स्पष्ट लिखा गया कि श्राद्ध मृतकों के निमित्त किए गए दान व ब्राह्मण भोजन को ही कहते हैं। हम यहाँ कुछ ग्रन्थों के वाक्यों को प्रस्तुत करते हैं।

१. **देशे काले च पात्रे च श्रद्धया विधिना च यत्।**
पितॄनुद्दिश्य विप्रेभ्यो दत्तं श्राद्धमुदाहृतम्॥

—श्राद्ध प्रकाश पृ० ३

अर्थात् देश काल और पात्र के अनुसार श्रद्धा से विधिपूर्वक पितरों के उद्देश्य से ब्राह्मणों को जो धनादि दिया जाता है वह श्राद्ध कहलाता है।

Scanned by CamScanner

२. श्राद्धं नामादनीयस्य तत्स्थानीयस्य वा
द्रव्यस्य प्रेतोद्देशेन श्रद्धया त्यागः ।।

—मिताक्षरा १-२१७

'खाने योग्य भोजन अथवा उसके स्थानापन्न धन को मृतक के नाम पर त्याग करना श्राद्ध है ।'

३. एतेन पितृनुद्दिश्य द्रव्य त्यागो ब्राह्मण
स्वीकरण पर्यन्तं श्राद्ध स्वरूपं प्रधानम् ।।

—श्राद्ध कल्पतरु पृ०—४

पितरों को लक्ष्य करके धन का त्याग और ब्राह्मणों द्वारा उसे स्वीकार करने को ही श्राद्ध का प्रधान स्वरूप मानना चाहिए । इत्यादि ।

श्राद्ध के इस स्वरूप पर अधिकांश लोग सदा ही आपत्ति करते रहे हैं । इससे भी यह सिद्ध होता है कि यह प्रथा कभी सर्वमान्य नहीं रही और प्रक्षिप्त है । जैसाकि डॉ. पी. वी. काणे अपने धर्मशास्त्र के इतिहास ग्रन्थ में लिखते हैं कि—'कर्म पुनर्जन्म एवं कर्म विपाक के सिद्धान्त में अटल विश्वास रखने वाले व्यक्ति इस सिद्धान्त के साथ कि पिण्डदान करने से तीन पूर्व पुरुषों की आत्मा को सन्तुष्टि प्राप्त होती है, कठिनाई से समझौता कर सकते हैं । पुनर्जन्म के सिद्धान्तानुसार आत्मा एक शरीर को छोड़कर दूसरे नवीन शरीर में प्रविष्ट होती है । किन्तु तीन पूर्व पुरुषों के पिण्डदान का सिद्धान्त यह बतलाता है कि तीनों पूर्वजों की आत्माएँ ५० या १०० वर्षों के उपरान्त भी वायु में सन्तरण करते हुए चावल के पिण्डों की सुगन्धि या सारतत्व वायव्य शरीर द्वारा ग्रहण करने में समर्थ होती हैं ।[1] तथा च—

१. धर्मशास्त्र का इतिहास पृ० ११९७-९८

Scanned by CamScanner

पितर लोग श्राद्ध में दिए गए पिण्डों से स्वयं सन्तुष्ट होकर अपने वंशजों को जीवन, संतति, सम्पत्ति, विद्या, स्वर्ग, मोक्ष सभी सुख एवं राज्य देते हैं। परन्तु दूसरा ग्रन्थ कहता है कि—'नाम एवं गोत्र उच्चरित मन्त्र एवं श्रद्धा आहुतियों को पितरों के पास ले जाते हैं। यदि किसी के पिता—देवता हो गए हैं तो श्राद्ध में दिया गया भोजन अमृत होकर उनके पास पहुँच जाता है, यदि असुर हो गए तो उनके अनुकूल बन कर मिलता है, यदि पशु हो गए हैं तो उन्हें घासादि बन कर मिल जाता है। तात्पर्य यह है कि पितरों को अगले जन्म में जो भी योनि मिलेगी श्राद्ध का भोजन उसी योनि के भोजन में बदल कर उन्हें मिल जाता है।

देखिए—मत्स्य पुराण १९-२
तथा श्राद्ध कल्पतरु पृ० ५

परन्तु ऊपर जो तर्क उपस्थित किए गए हैं वे सन्तोषजनक नहीं हैं और उनमें बहुत खींचातानी है।

जो अनुमान उपस्थित किया गया है वह यह है कि श्राद्ध में जो अन्न पान दिया जाता है, वह पितरों के उपयोग के लिए विभिन्न द्रव्यों में परिवर्तित हो जाता है। इस व्याख्या को स्वीकार करने में बड़ी कठिनाई यह है कि पितृगण विभिन्न स्थानों में मर सकते हैं और श्राद्ध बहुधा उन स्थानों से दूर एक ही स्थान पर किया जाता है। ऐसा मानना क्लिष्ट कल्पना है कि जहाँ दुष्कर्मों के कारण कोई पितर पशु रूप में परिवर्तित हो गए हैं, ऐसे स्थान विशेष में उगी हुई घास वही है जो सैकड़ों कोस दूर श्राद्ध में दिए गए द्रव्यों के कारण उत्पन्न हुई है। इतना ही नहीं यदि एक या सभी पितर पशु आदि में परिवर्तित हो गए हैं तो किस प्रकार सन्तानों को आयु व धन आदि दे सकते हैं?

Scanned by CamScanner

जैसी कि कहावत है कि एक झूठ को छिपाने के लिए सौ झूठ बोलना पड़ता है, वही हाल इन मृतक श्राद्ध के समर्थक ग्रन्थकारों का है। इनके किन्हीं ग्रन्थों में तो लिखा है कि पितर स्वयं ब्राह्मणों के शरीर में प्रवेश करके भोजन का स्वाद लेते हैं और कहीं लिखा है कि पितर पक्षियों के रूप में विचरते हैं। देखिए गरुड़ पुराण प्रेतखण्ड में—

'निमन्त्रितास्तु ये विप्राः श्राद्ध पूर्वदिने खगः।
प्रविश्य पितरस्तेषु भुक्त्वा यान्ति स्वमालयम्॥
श्राद्ध कर्त्ता तु यद्येकः श्राद्धे विप्रो निमन्त्रितः।
उदरस्थ पिता तस्य वाम पार्श्वे पितामहः।
प्रपितामहो दक्षिणतः पृष्ठतः पिण्ड भक्षकः॥

—गरुड़ पु. प्रेत० अ० १०

अर्थात् हे खग गरुड़! जो ब्राह्मण श्राद्ध से एक दिन पूर्व निमन्त्रित किए जाते हैं पितर उनमें प्रवेश कर भोजन करके अपने घर चले जाते हैं। यदि श्राद्ध कर्त्ता ने एक ही ब्राह्मण को निमन्त्रण दिया है तो श्राद्ध कर्त्ता का मृतपिता ब्राह्मण के पेट में, बाबा बाईं कोख में और पड़बाबा दाईं कोख में घुस कर पीछे से पिण्डों को खाते हैं। इत्यादि—

परन्तु अन्यत्र लिखा है—

'वयसां हि पितरः प्रतिमया चरन्तीति विज्ञायते।

—बौधा० धर्म सू० २-८-१४

अर्थात् पितर निश्चय ही पक्षियों के रूप में विचरते हैं, अतः उन्हें पिण्ड देना चाहिए।

Scanned by CamScanner

न च पश्यन् काकादीन् पक्षिणस्तु वारयेत् ।
तद्रूपा पितरस्तत्र समायान्ति बुभुत्सवः ।।

—औशनस स्मृति एवं श्राद्ध कल्पतरु, पृ० १७

अर्थात् श्राद्ध कृत्य देखते हुए कौवा आदि पक्षियों को भगावें नहीं। भूखे पितर उन्हीं के रूप में वहाँ आते हैं। इत्यादि।

तात्पर्य यह है कि कौवा, बाज आदि पक्षी यदि श्राद्ध में आ जावें तो उन्हें अपना बाप, बाबा, पड़बाबा ही समझना चाहिए। समझ में नहीं आता कि पितर अपने पुत्रों के पास सीधे आने में शर्माते क्यों हैं? फिर कौआ जैसे गन्दे पक्षी के रूप में ही क्यों आते हैं, तोता बन कर ही आ जाते ब्राह्मणों के पेट में बैठने की बजाय अलग से ही रखे हुए भोजन का रस ले लेते। सत्य क्या है पाठक स्वयं विचारें। हमारी दृष्टि में तो यह सब मिथ्या प्रलाप है।

श्राद्ध में मांस भक्षण आवश्यक—दुर्गन्ध रहित स्वादिष्ट घृत युक्त मांस श्राद्ध में उत्तम माना गया है। आपस्तम्ब धर्म सूत्र (२-८-१९) तथा मनुस्मृति (३-१२२) के अनुसार श्राद्ध में उत्तम मांस का भोजन के साथ समावेश अवश्य होना चाहिए। यदि श्राद्ध में गो मांस खिलाया जावे तो पितर एक वर्ष के लिए सन्तुष्ट हो जाते हैं। भैंस का मांस खिलाने से एक वर्ष से अधिक तक भी तृप्त रहते हैं। यदि गैंडे के चमड़े पर ब्राह्मणों को बिठा कर गैंडे का ही मांस खिलाया जावे तो अनन्त काल तक पितर तृप्त रहते हैं।

वसिष्ठ धर्म सूत्र (११-३४) कहता है यदि पितृ श्राद्ध में आमन्त्रित संन्यासी, ब्राह्मण मांस नहीं खाते तो वे उस पशु के शरीर के बालों की संख्या के बराबर वर्षों तक नरक में रहता

Scanned by CamScanner

है। यही बात विष्णुधर्मोत्तर पुराण में भी दृढ़तापूर्वक कही गई है कि श्राद्ध में भोजन करने वालों की पंक्ति में परोसे गए मांस का जो भक्षण नहीं करता, वह नरक में जाता है। कूर्मपुराण (२-२२-७५) में व्यवस्था दी है कि जो ब्राह्मण श्राद्ध कर्म में नियुक्त होकर परोसे गए मांस को नहीं खाता तो वह इक्कीस जन्म तक पशु योनि में जन्म लेता है। श्राद्ध कर्म में गाय, भैंस, भेड़, बकरा, हिरण, सुअर, खरगोश, कछुवा, मछली, तीतर आदि पशु-पक्षियों और बाध्रीणश नामक जन्तु को तथा अन्य अनेक प्रकार के पशुपक्षियों के मांस को घृत के साथ पका कर ब्राह्मणों को खिलाने का विधान किया गया है। उक्त सारी मान्यताएँ मनुस्मृति, याज्ञवल्क्यस्मृति, कात्यायन श्राद्ध सूक्त, विष्णु पुराण, विष्णुधर्मसूत्र, ब्रह्माण्ड पुराण और पद्म पुराण आदि ग्रन्थों में वर्णित हैं। भारत में बंगाल, बिहार, उत्तरप्रदेश के कई स्थानों में अभी भी श्राद्ध में मांस खिलाया जाता है। कहीं-कहीं इसे यह कह कर छोड़ दिया है कि कलियुग में मांस का निषेध है। परन्तु इससे यह तो सिद्ध होता है कि सतयुग आदि में इसे अच्छा माना जाता था।[1]

मृतक श्राद्ध भोजन के अधिकारी ब्राह्मण—श्राद्ध कर्त्ता किस प्रकार के ब्राह्मणों को निमन्त्रण देवे, इसका भी श्राद्ध ग्रन्थों में रोचक वर्णन किया गया है जो ब्राह्मणों के परस्पर द्वेष, ऊँच नीच, छूतछात और स्वार्थ वृत्ति को ही प्रदर्शित करता है।—कुछ ग्रन्थों में लिखा है कि श्राद्ध भोजन में वेद के विद्वान् सदाचारी, कुलीन ब्राह्मण को ही निमन्त्रित करना चाहिए। कहीं लिखा है कि अपने मित्र और गोत्र सम्बन्धी को नहीं बुलाना चाहिए और कहीं लिखा है कि इन्हें बुलाना चाहिए। कहीं पर लिखा है कि

Scanned by CamScanner

यदि योग्य है तो अपने भाई को ही जिमाना चाहिए, एक ग्रन्थ ने संन्यासियों और योगियों को ही श्राद्ध भोजन खाने योग्य माना है।

एक ग्रन्थकार ने युवा लोगों को वृद्धों की अपेक्षा वरीयता दी है। किसी ने पिता के श्राद्ध में युवा और पितामह के श्राद्ध में वृद्ध ब्राह्मण को आमन्त्रित करने को कहा है। यह भी लिखा मिलता है कि धनवान् के स्थान पर दरिद्र ब्राह्मण को बुलाना ठीक है। किसी का कहना है कि शिव की पूजा मन लगाकर करने वाले ब्राह्मण को खिला देना ही पर्याप्त है। किसी के मत में केवल गायत्री मन्त्र जानने वाले सदाचारी ब्राह्मण को पहले स्थान मिलना चाहिए। स्कन्द पुराण के अनुसार ब्राह्मणों के कुल, शील, अवस्था और रोटी बेटी के सम्बन्धों की जानकारी कर लेनी चाहिए। जहाँ तक बने सर्वप्रथम संन्यासी, फ़िर चतुर्वेदी वह न मिले तो त्रिवेदी या फिर द्विवेदी अथवा एक वेद का जानकार तो होना ही चाहिए। हेमाद्रि कहता है कि ब्राह्मण भले ही विद्वान् हो परन्तु यदि चरित्रहीन है तो उससे बात भी नहीं करनी चाहिए।

किन्तु कुछ ऐसी उक्तियाँ भी मिलती हैं जो ब्राह्मणों की छानबीन और योग्यता व चरित्र परीक्षण की निन्दा करती हैं। उनका कहना है कि छानबीन की अपेक्षा सरल सीधा व्यवहार अच्छा माना जाता है, भविष्य पुराण (बालं भट्टी आचार पृ. ४९५) के अनुसार ब्राह्मणों के गुण नहीं केवल जाति देखनी चाहिए।[1] स्कन्द पुराण के अनुसार गया के ब्राह्मण आचार भ्रष्ट होते हुए भी वेदविद् ब्राह्मण से श्रेष्ठ होते हैं।

१. धर्म शास्त्र का इतिहास भाग ३ पृ० १२२३ से १२२८
वही पृ० १२२८-२९

Scanned by CamScanner

मनुस्मृति के अनुसार निम्नलिखित ब्राह्मण श्राद्ध में निमन्त्रण देने योग्य नहीं हैं। १-चोर, २-जाति बहिष्कृत, ३-नपुंसक, ४-नास्तिक, ५-ब्रह्मचारी, ६-वेद न पढ़ने वाला, ७-चर्म रोगी, ८-जुआरी, ९-गाँव का पुरोहित, १०-वैद्य, ११-देवपूजक (पुजारी), १२-मांस बेचने वाला, १३-दुकानदार, १४-किसी ग्राम या राजा का नौकर, १५-विकृत नाखून वाला, १६-काले दाँतों वाला, १७-गुरु विरोधी, १८-यज्ञाग्नि रहित, १९-सूदखोर (ब्याज लेने वाला), २०-क्षय रोगी, २१-पशुपालक (जीविका के लिए), २२-बड़े भाई से पहले विवाह करने वाला, २३-वह बड़ा भाई जिससे पहले छोटे भाई का विवाह हुआ हो, २४-पंच महायज्ञ न करने वाला, २५-ब्राह्मण और वेदविरोधी, २६-जाति का चौधरी या पटेल, २७-अभिनेता और गायक, २८-चरित्रहीन विद्वान्, २९-पुनर्विवाहित विधवा का पुत्र, ३०-भेंडा या काना, ३१-शूद्रा का पति, ३२-जिसके घर पत्नी का प्रेमी रहता हो, ३३-पैसा लेकर पढ़ाने वाला, ३४-वेतन भोगी गुरु से पढ़ने वाला, ३५-शूद्रों का शिक्षक, ३६-शूद्र से पढ़ने वाला, ३७-कर्कश और असत्य बोलने वाला, ३८-व्यभिचारिणी का पुत्र, ३९-विधवा पुत्र, ४०-अकारण मातापिता गुरु को त्यागने वाला, ४१-आग लगाने वाला, ४२-समुद्र यात्रा करने वाला, ४३-भाट या चारण, ४४-तेली, ४५-झूठी साक्षी देने वाला, ४६-जाली लेख व मुहर बनाने वाला कूट लेखक, ४७-नकली रुपया बनाने वाला, ४८-जन्मजात रोगी, ४९-शराबी, ५०-जुआ शराब की प्रेरणा देने वाला, ५१-पिता के विरुद्ध मुकदमा लड़ने वाला, ५२-महापापी, ५३-कपटाचारी, ५४-रस विक्रेता, ५५-मिठाई और दूध विक्रेता, ५६-धनुष वाण निर्माता, ५७-बड़ी बहिन से पूर्व विवाह करने वाली छोटी बहिन का पति,

Scanned by CamScanner

५८-जुआ खिलाने का व्यवसायी, ५९-ज्योतिषी (फलित), ६०-चिड़ियों को फंसाने वाला, ६१-दूत कर्मकर्ता (सन्देशवाहक), ६२-बाँध बनाने वाले, ६३-चुगलखोर, ६४-पशु प्रशिक्षक, ६५-कुत्तों का प्रशिक्षक व व्यवसायी, ६६-बाज पालने वाला, ६७-कुमारी को अपवित्र करने वाला, ६८-शिल्पकार, ६९-जीव हिंसक, ७०-शूद्रों से जीविका लेने वाला, ७१-भिक्षा मांगने वाला, ७२-स्वयं कृषि करने वाला, ७३-भेड़, भैंस पालने वाला, ७४-धन के लिए मुर्दे ढोने वाला, ७५-धन के लिए वृक्ष लगाने वाला, ७६-धार्मिक कर्मकाण्ड न जानने वाला, ७७-अन्धा, ७८-पागल, ७९-संक्रामक रोगी इत्यादि ब्राह्मणों को श्राद्ध भोजन की पंक्ति में बिठाने से श्राद्ध का फल नष्ट हो जाता है।[1]

महाभारत अनुशासन पर्व अ. ९० श्लोक १६ से १७ में लिखा है कि जो आदमी जानबूझकर जुवारी, शराबी, गर्भघातक, क्षयरोगी, पशुपालक, विकृत रूप, सन्देशवाहक, सूदखोर, नाचने वाले, गाने वाले, दुकानदार, पागल, शराब बेचने वाले, समुद्र यात्री, राजा के नौकर, चोर, कारीगर (शिल्पकार), ज्योतिषी, पुजारी, कृषक और गर्भघातक ब्राह्मणों को भोजन कराता है तो परलोक में उसके पितर निश्चय ही विष्ठा मलमूत्र खाते हैं।[2]

मत्स्य पुराण के अनुसार कृतघ्न, नास्तिक तथा म्लेक्ष देशों में रहने वाले ब्राह्मणों तथा त्रिशंकु, करबीर, आन्ध्र, चीन, द्रविड़ एवं कोंकण देश निवासी ब्राह्मणों को श्राद्ध से अलग कर देना चाहिए। सौर पुराण अंग, वंग, कलिंग, सौराष्ट्र, गुर्जर, आभीर,

---

१. वही पृ० १२२९ देखें मनु. ३/१७०–१८२

२. पौराणिक पोल प्रकाश पृ० ७७१ (पं. मनसाराम कृत)

Scanned by CamScanner

कोंकण, द्रविड़, दक्षिणापथ, अवन्ती एवं मगध के ब्राह्मणों को श्राद्ध में बुलाने का निषेध करता है।[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि श्राद्ध भोजन करने के लिये आधे भारत से अधिक के ब्राह्मण तो वैसे ही अयोग्य हो गए मात्र किसी देश विशेष में निवास करने के कारण। शेष पूर्व उल्लिखित कर्मों के करने अथवा दुष्कर्मों के कारण अयोग्य हो गए। हमारे विचार से इस लोक में तो ब्राह्मण श्राद्ध भोजन के योग्य मिलेंगे नहीं। क्योंकि किसी न किसी ग्रन्थ की मान्यताओं या कसौटियों में तो अयोग्य हो ही जावेंगे। कोई इन धूर्तों से पूछे कि उक्त प्रान्तों के श्राद्ध में किसी अन्य प्रान्त से ब्राह्मण बुलाए जावेंगे ?

श्राद्ध भोजन की निन्दा—स्मृतियों ने श्राद्ध भोजन को अच्छा नहीं माना है, उन्होंने श्राद्ध भोजन खाने वालों को दोषी माना है और प्रायश्चित्त का विधान किया है। आजकल भी बहुत से विद्वान् ब्राह्मण श्राद्ध भोजन से बचते हैं।

मिताक्षरा (याज्ञवल्क्य स्मृ. २-२८९) का कहना है कि भरद्वाज के अनुसार यदि कोई ब्राह्मण श्राद्ध भोजन करे तो उसे प्रायश्चित स्वरूप छः प्राणायाम करने चाहिए। यदि वह किसी की मृत्यु के तीन मास से लेकर एक वर्ष के भीतर श्राद्ध भोजन करता है तो उसे एक दिन का उपवास करना चाहिए इसी प्रकार पृथक्-पृथक् श्राद्धों में भोजन करने पर चान्द्रायणादि व्रत तक करने का प्रायश्चित्त निर्धारित किया गया है। वराह पुराण के अनुसार यदि कोई ब्राह्मण श्राद्ध भोजन खाकर उसे पेट में भरे हुए ही मर जाय तो वह एक कल्प तक भयङ्कर नरक में

Scanned by CamScanner

रहता है फिर राक्षस का जन्म पाता है तब पाप से छुटकारा मिलता है।[1]

इस प्रकार श्राद्ध भोजन एक पापकर्म है और श्राद्ध भोजी ब्राह्मण पापी होता है, यह स्वतः सिद्ध हो गया।

मृतक श्राद्ध एक निन्दित कर्म—कुछ ऐसे प्रमाण भी पाए जाते हैं, जिनमें मृतक श्राद्ध को सत्पुरुषों द्वारा गर्हित एक निन्दित कर्म माना गया है। उदाहरण के लिए महाभारत में राजा निमि का कथानक है जिसका श्रीमान् पुत्र मृत्यु को प्राप्त हो गया। निमि ने शोकाकुल होकर स्वपुत्र का श्राद्ध किया और बाद में पश्चाताप करने लगा।

यथा—

तत् कृत्वा स मुनि श्रेष्ठो धर्म संकरमात्मनः।
पश्चातापेन महता तप्यमानोऽभ्यचिन्त यत्॥
अकृतं मुनिभिः पूर्वं किम्मयेदमनुष्ठितम्।
कथं नु शापेन न मां दहेयुर्ब्राह्मणा इति॥

—महाभारत अनु. पर्व अ. ९१ श्लोक १६, १७

मृतक श्राद्ध में प्रदत्त भोजन पितरों को नहीं मिलता—पुराणों में ऐसे भी प्रमाण मिलते हैं, जिनसे यह सिद्ध होता है कि मृतक श्राद्ध में दिए गए ब्राह्मण भोजन व पिण्ड आदि का भोजन पितरों को नहीं मिलता। मृतक श्राद्ध समर्थक ब्राह्मणों के इस दावे का कि श्राद्ध में प्रदत्त भोजन पितरों को उनके अगले जन्म में भी मिलता है, खण्डन करने वाली एक कथा भविष्य पुराण में वर्णित है। कथा इस प्रकार है—विदर्भ देश में श्येनजित राजा

---

१. वराह पुराण—१८९-१२ व १३

Scanned by CamScanner

के राज्य में सुमति नामक ब्राह्मण अपनी पत्नी जयश्री के साथ रहता था। जब वे दोनों मरे तो अपने पुत्र के यहाँ पर ही सुमति बैल बना और उसकी स्त्री कुतिया। सुमति के पुत्र ने जिस दिन अपने माता पिता का श्राद्ध किया, उसी दिन उसने बैल को खूब मारा और दिन भर भूखा रखा तथा उसकी स्त्री ने कुतिया की कमर ही तोड़ दी। रात को दोनों (कुतिया व बैल) ने परस्पर वार्तालाप करते हुए कहा कि इसने व्यर्थ ही श्राद्ध किया, हम तो भूख से तड़प रहे हैं। यह कथा भविष्य पुराण उत्तर खण्ड अ० ७८ श्लो० ४०, ४१ तथा पद्मपुराण उत्तर खण्ड ६ अध्याय ७८ में भी आई है।[1]

इसके अतिरिक्त गरुड़ पुराण में कहा गया है कि उपवास से मरने वाले, जहरीले जन्तुओं के काटने, गला घोंट देने, चोंच प्रहार से, जहर, अग्नि, बैल और ब्राह्मणों के द्वारा मरने वाले, हैजे, आत्महत्या, गिरने, बान्धने और पानी में डूब कर मरने वाले, भूचाल, पहाड़ कटने, जंगली जानवरों के द्वारा या बिजली से मरने वाले, दीवार गिरने, खाट पर लेटे हुए मरने वाले, चोर, चाण्डाल और ऋतुमती चाण्डाली और धोबन के सम्बन्ध से मरने वाले, शस्त्रों की चोट से, कुत्ते के काटने से मरने वाले, ऊपर नीचे से उच्छिष्ट और विधिहीन मौत मरने वालों को भी श्राद्ध भोजन नहीं मिलता अतः इनका श्राद्ध न करना चाहिए।[2]

वृषोत्सर्ग के बिना मृतक श्राद्ध व्यर्थ—गरुड़ पुराण के अनुसार मृतक के लिए मरने के ११वें दिन यदि वृषभ नहीं छोड़ा

---

१. पौराणिक पोल प्रकाश पृ० ७८८

२. गरुड़ पुराण प्रेतखण्ड अ० ४

Scanned by CamScanner

गया तो चाहे कितने श्राद्ध करो वह मृतक प्रेतावस्था से छुटकारा नहीं पा सकता।[1]

इसके अनुसार यदि प्रत्येक मृतक के लिए बैल छोड़ा जावे तो प्रतिदिन हजारों लाखों बैल छोड़ने पड़ें और संसार में बैल ही बैल हो जावें तथा सबका जीना दूभर हो जावे। सबके लिए सांड का मिलना भी असम्भव हो जावे।

मृतक श्राद्ध और शैयादान—गरुड़ पुराण प्रेतखण्ड (३४-६९) पद्म पुराण एवं मत्स्य पुराण ने मरने वाले के नाम से शैयादान करने की बड़ी प्रशंसा की है। परन्तु पद्म पुराण में ही इसे एक निन्दित कर्म कहा गया है और शैयादान लेने वाले की निन्दा की गई है और प्रायश्चित्त का विधान किया गया है। वहाँ कहा गया है कि शैयादान वेदों और पुराणों में गर्हित माना गया है और जो लोग इसे लेते हैं वे नरक गामी होते हैं।[2]

फिर भी कुछ लोगों ने यह सोचकर कि नरक में जब जायेंगे तब देखा जायेगा अभी मिलता हुआ मुफ्त का माल क्यों छोड़ा जावे। इस प्रकार उन्होंने स्वयं को शैयादान ग्रहण करने वाले पात्र और महापात्र का रूप प्रदान कर दिया। मृतक श्राद्ध के ग्रन्थों में ऐसी अनेक मूर्खतापूर्ण ऊलजलूल चर्चाओं का भण्डार भरा है जो कि हास्यास्पद और तर्क हीन है। हमने मात्र संक्षिप्त दर्शन ही कराया है।

—:※※:—

---

१. गरुड़ पुराण २-५-४० से ४५ श्लोक तक

२. पद्म पुराण सृष्टि खं० १०-१७, १८

Scanned by CamScanner

उपसंहार

चारों वेदों में कहीं भी श्राद्ध शब्द नहीं आया और वैदिक काल में श्राद्ध नाम से कोई कृत्य प्रचलित नहीं था। हाँ, श्रौतयागों में पिण्डपितृयाग और महापितृयज्ञ आदि का वर्णन मिलता है, जिसमें आहिताग्नि वसु, रुद्र एवं आदित्य संज्ञक देवों को क्रमशः पिता, पितामह, प्रपितामह रूप देव पितरों के रूप में तथा उनकी प्रतिनिधि ऋतुओं को पिण्ड प्रदान करता था। इस समय अन्वाहार्यपचन किया जाता था, कालान्तर में इसे ही श्राद्ध नाम दिया गया। यह एक देव कृत्य था इसी का अनुकरण करते हुए मनु ने पंच महायज्ञों के अन्तर्गत पितृ महायज्ञ का विधान स्मार्त कर्मों में किया। स्मार्त कर्म मानवी कृत्य हैं। मनुष्य अपने जीवित पितरों को प्रतिदिन सत्कार और भोजन छादन प्रदान करके उन्हें तृप्त करे, उनका आशीर्वाद प्राप्त करे, इसे श्रद्धापूर्वक करने का विधान होने के कारण इसे श्राद्ध नाम दिया गया। यह समाज को व्यवस्थित रखने और सुदृढ़ बनाने का महत्त्वपूर्ण अंग था।

इसके अतिरिक्त यज्ञों के द्वारा पितृयान या पितृलोक अर्थात् प्राणियों के आवागमन रूप मार्ग में विद्यमान पितरों अर्थात् पालक शक्तियों को उपयोगी बनाया जाता था, इनमें सूर्य व चन्द्र रश्मियाँ, ऋतुएं, मास, अर्ध मास, वसु, रुद्र व आदित्य, प्राण, काल, सम्वत्सर, माता-पिता और ज्ञानी, वृद्ध व रक्षक जन आदि को ही पितर कह कर सम्बोधित किया गया है। वेदों में इस

Scanned by CamScanner

लोक को सुदृढ़ स्वस्थ रखने तथा इसका पूर्ण लाभ लेने का वर्णन पाया जाता है। इससे स्वस्थ, बलिष्ठ और ज्ञानवान् सन्तान प्राप्त होते हैं। इसी मार्ग से या इसी लोक में जीव पुनः-पुनः माता-पिता के दर्शन करते हैं। जैसा कि निम्नलिखित वेदमन्त्र में वर्णन है—

द्वे सृतोऽअश्रृणवं पितृणामहं देवानामुत मर्त्यानाम्।
ताभ्यामिदं विश्वमेजत् समेति यदन्तरा पितरं मातरं च॥
—यजु० १९-४७

परन्तु मृत पूर्वजों के उद्देश्य से ब्राह्मण जिमाने और दान देने रूप श्राद्ध कृत्य का वेदों व वैदिक साहित्य में कहीं उल्लेख नहीं मिलता।

पिण्ड पितृयाग में अन्वाहार्य पचन में पकाए गए चावलों का यज्ञ शेष ऋत्विक् व यजमान खाया करते थे। स्मार्त कृत्यों में जीवित पितरों को खिला कर पश्चात् गृहस्थ को भोजन करने का विधान अवश्य पाया जाता है।

परन्तु वर्णाश्रम व्यवस्था और यज्ञ संस्था के दूषित हो जाने के पश्चात् वैष्णवमत का प्रादुर्भाव होने पर उक्त पितृयज्ञ को मृतक श्राद्ध का रूप प्रदान कर दिया गया। मनुस्मृति में जीवितों के आह्निक श्राद्ध के साथ ही मृतक श्राद्ध का प्रक्षेप पाया जाता है। वैष्णवों ने वैदिक ग्रन्थों में मृतक श्राद्ध, अवतारवाद तथा शाप और वरदान की झूठी कथाएं घुसेड़ कर उन्हें भ्रष्ट करने का कुकृत्य किया। कालान्तर में यज्ञों में पशुवध के समर्थकों ने मांस को श्राद्ध का अनिवार्य भक्ष्य बना दिया। वाममार्गियों ने भी इसको अपना समर्थन दे दिया। इस प्रकार पुरातन वैदिक

Scanned by CamScanner

धर्म कर्म और आचार को नष्ट-भ्रष्ट करने का श्रेय इन्हें ही जाता है।

मृतक श्राद्ध समर्थक वा विधायक ग्रन्थों के अवलोकन से यह भली-भाँति स्पष्ट हो जाता है कि यह एक मूर्खतापूर्ण असम्बद्ध क्रियाकलापों और मान्यताओं का बण्डल है जो ब्राह्मणों द्वारा जनसाधारण के धनादि को कर्मकाण्ड के नाम पर लूटने के लिए रचा गया एक षड्यन्त्र है, पाखण्ड है। इन ग्रन्थों में कहीं तो कहा गया है कि ब्राह्मणों को खिलाया गया भोजन पूर्वजों को उनके अगले जन्म में मिलता है और कहीं लिखा है कि पितर ब्राह्मणों के पेट में घुस कर भोजन खाते हैं। कहीं लिखा कि वे वायु में विचरते हैं और पिन्डों की गन्ध लेते हैं। कहीं पर लिखा है कि पितर कौवा और बाज बन कर भोजन करने आते हैं। ब्राह्मणों के मध्य पारस्परिक ईर्ष्या द्वेष इस प्रकार वर्णित है कि इन ग्रन्थों की मान्यताओं के अनुसार कोई ब्राह्मण श्राद्ध में जीमने के योग्य मिलना मुश्किल है। श्राद्ध में जीमना और दान लेना निन्दित कर्म भी कहा गया है फिर भी ब्राह्मण श्राद्ध में जीमने और दान लेने को लालायित रहते हैं। कुल मिलाकर हमारी सम्मति में यह एक व्यर्थ कृत्य है और किसी भी बुद्धिमान् व्यक्ति को इसे नहीं करना चाहिए। इससे कुछ भी लाभ मिलने वाला नहीं। विद्वान् ब्राह्मणों को चाहिए कि वे इस प्रकार के निन्दित कृत्य का विरोध करें और मृतक श्राद्ध में जीमने न जावें और न किसी को प्रोत्साहित करें।

वेद में ज्ञानी पालक और रक्षक जनों को बुलाने उनके सत्कार करने, उपदेश ग्रहण करने का वर्णन है, जिससे कि ये जीवित पितर ही हैं, मृत पितर न आते हैं और न

Scanned by CamScanner

उपदेश ही दे सकते हैं। समय-समय पर हमारी रक्षादि भी नहीं कर सकते।

वेद में साधारण गृहस्थों को पृथ्वी लोक के पितर तथा कर्म लोक में रहने वाले जनों को अन्तरिक्षस्थानी तथा ज्ञान मार्ग में स्थित ज्ञानियों को द्युस्थानी पितर कहा गया है। इसी प्रकार ब्रह्मचर्याश्रम के आचार्य जन पृथ्वी लोकस्थ हैं, गृहस्थ में स्थित विद्वान् अन्तरिक्षस्थ और वानप्रस्थ लोग द्युस्थानी पितर कहे गए हैं। यज्ञ में गार्हपत्यानि के विद्वान् पृथ्वीस्थ पितर हैं, दक्षिणाग्नि के विद्वान् अन्तरिक्षस्थ और आहवनीयाग्नि के विद्वान् द्युस्थानी पितर कहे गए हैं। ऋग्वेदी अथवा पृथ्वीस्थ अग्नि विद्या व पदार्थ विद्या के जानकार, वायु-विद्युत वा अन्तरिक्षस्थ अग्नि विद्या के विद्वान् यजुर्वेदी और द्यौस्थाग्नि, प्राण, प्रकाश और सामवेद के ज्ञाता विद्वान् क्रमशः पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्यौ स्थित पितर कहे गए हैं। दूसरे शब्दों में अग्नि, वायु, आदित्य और पवमान, पावक और शुचि अग्नियों के विद्वान् पितर कहे गए हैं।

वेदों से यह भी विदित होता है कि साधारण गृहस्थ जो अग्नि में भोजन पका कर खाते हैं किन्तु यज्ञ नहीं करते उन्हें अग्निष्वात्त पितर कहा गया है अथवा अनग्निदग्ध कहा है। अग्निहोत्री और विरक्तों को अग्निदग्ध कहा गया है। व्यवहार विद्या में कुशल लोग बर्हिषद् पितर हैं। अखण्ड ब्रह्मचारी, आचार्य और कुशल वैद्यों को सोमसद वा सोमपा पितर कहा है। इसी प्रकार लोक में संज्ञान और स्नेह बनाए रखने में कुशल विद्वान् आज्यपा पितर हैं और न्याय कुशल जन यम राजा पितर हैं तथा कालविद् सुकालित् कह कर सम्बोधित किए गए हैं। ये सभी पितर इसी संसार के जीवित प्राणी हैं। इन पूर्व वर्णित

Scanned by CamScanner

पितरों के अतिरिक्त वेदों से किन्ही मृत पितरों की प्रतीति नहीं होती। अपने पिता, पितामह, प्रपितामह तथा बाहर के सगे सम्बन्धियों में विद्यमान इसी श्रेणी के लोग जिन्हें तता और तातामह कहा गया है। इस प्रकार अपने और पराए सभी ज्ञानी, वृद्धजनों की सेवा, सत्कार श्रद्धा से करना, यज्ञों के द्वारा पितृयान मार्ग को पवित्र और समर्थ रखना यही पितृयज्ञ या श्राद्ध है, सज्जन पुरुषों को यही करणीय है। इति।

—:※※:—

Scanned by CamScanner

आर्य परिवार प्रकाशन समिति, कोटा

गुण, कर्म और स्वभाव के आधार पर परिवार और समाज निर्माण के लिये नगर आर्यसमाज केथूनीपोल, कोटा (वर्तमान आर्यसमाज महर्षि दयानन्द नगर तलवण्डी, कोटा) द्वारा २७ दिसम्बर १९८१ को आर्य परिवार संघ का गठन किया गया था। ३१ अगस्त, ९० को आर्य परिवार संस्था, कोटा इस नये नाम से पंजीकरण करवा कर इसे स्वतन्त्र संगठन (संस्था) का रूप दिया गया। जिसमें साहित्य प्रकाशन और प्रचार आदि कुछ और उद्देश्य सम्मिलित किये गये। आर्य परिवार प्रकाशन समिति, कोटा इसी संस्था द्वारा गठित उपसमिति है। श्री वेदप्रिय शास्त्री द्वारा लिखित प्रस्तुत पुस्तक 'श्राद्ध विवेक' श्री श्रवणलालजी शर्मा (वारां) के ६०००)०० सात्विक दान से उनकी पूज्या माता श्रीमती बद्रीबाई की स्मृति में प्रकाशित की गई है। तद्‌र्थ श्री श्रवणलालजी शर्मा को संस्था और प्रकाशन समिति की ओर से बहुत-बहुत धन्यवाद समर्पित किया जाता है।

—प्रकाशित पुस्तकें—

१. **स्वामी दयानन्द का आर्थिक चिन्तन,** डॉ. रामकृष्ण आर्य, १९९१, मूल्य साधारण–१२०/- पुस्तकालय–२००/-

२. **दहेज एक भयंकर विषधर,** डॉ. रामकृष्ण आर्य, १९९३, मूल्य—१०/-

३. **गायत्री परिवार एक समीक्षा,** डॉ. रामकृष्ण आर्य, १९७८, अनुपलब्ध (शीघ्र प्रकाश्य)

४. **कर्मकाण्ड विवेक,** वेदप्रिय शास्त्री, (शीघ्र प्रकाश्य)

—नरेन्द्र कुमार वार्ष्णेय
संयोजक

Scanned by CamScanner

श्री वेदप्रिय शास्त्री

वेद और वैदिक साहित्य के प्रखर चिन्तक और महोपदेशक श्री वेदप्रिय शास्त्री हलचल मचाने वाले एक प्रभावशाली वक्ता के साथ एक परिपूर्ण यज्ञ-संस्कारकर्ता पण्डित और लेखक भी हैं। 'श्राद्ध विवेक' अपने विषय की आपकी एक मौलिक कृति है। आपका जन्म शनिवार, मार्गशीर्ष शु. ४, सं. २००२ (सन् १९४६) को ग्राम बारा, जिला फतेहपुर (उ. प्र.) में श्री कालीचरणजी शर्मा के यहाँ हुआ। आपने उ. प्र. बोर्ड से विज्ञान में मैट्रिक और सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी से शास्त्री की परीक्षा उत्तीर्ण की। पश्चात् १९६५ में आर्यसमाज से परिचय और १९७० में प्रवेश के साथ ही नौकरी त्यागते हुए समर्पण भाव से प्रचार कार्य में संलग्न हो गये हैं। यही इनका जीवन सम्बल भी है।

Scanned by CamScanner